


मुद्रक—

बाबूराम शर्म्मा

"वीर" प्रेस, बिजनौर।




प्रस्तावना

हमारे उदार पाठक पाठिकाओं को विदित हो कि ता० १५ अप्रेल सन् १९२९ के "जैनमित्र" नामक साप्ताहिक पत्र के सम्पादक जैनधर्मभूषण, धर्मदिवाकर, ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी ने "हमारा भ्रमण" शीर्षक लेखमें उड़िया भाषा में लिखित खारवेल चरित्र का अनुवाद कर प्रकाशित करने का अनुरोध किया था। उन पंक्तियों की अविकल प्रतिलिपि निम्न लिखित है:—

× × +

"रात को मेल में बैठ कर ता० २८ मार्च के दोपहर को कलकत्ता आए। राजा खारवेल इधर बहुत प्रसिद्ध हुए हैं; इनका नाम रौरक भी प्रसिद्ध है। रौरक नाम का उड़िया काव्य है, जिसको पं० दीनकिशोर शाह सम्बलपुर ने रचा है। राजा खारवेल की स्त्री धूसी थी। यह बड़ी वीर थी। इस की कथा नीलकण्ठदास एम० ए० साखी-गोपाल निवासी ने उड़िया में बड़ी मनोहर लिखी है। पुरी सत्यवादी प्रेस में छपी है, जो जैन विद्वान उड़िया भाषा जानते हों उनको राजा खारवेल का इतिहास खोज कर हिन्दी में प्रकट करना चाहिये।"

× × ×

इन पंक्तियों को हमारे मित्र श्रीयुत करोड़ीलाल मुन्नालाल जी जैन बन्धुओं ने पाठ कर हमसे खारवेल चरित्र लिख देने का अनुरोध किया और प्रकाशित करने का सम्पूर्ण भार आपने स्वयं उठाने का भी वचन दिया। उनके विशेष आग्रह तथा पत्र में ब्रह्मचारी जी का अनुरोध देखकर हमने इसे स्वीकार कर इस पुस्तक को आज विज्ञ पाठक पाठिकाओं के सामने रखने का साहस किया है। सच पूछो तो हम न तो कोई भारी कवि हैं और न उच्च कोटि के लेखक ही। फिर मातृभाषा भी उड़िया है. इससे इसमें भाषा की त्रुटियों के लिये प्रथम ही क्षमा प्रार्थना करते हैं।

स्वीकार कर लेने पर हमने गौरक और धूसी चरित्र द्योतक काव्य पुस्तकें मगाने का प्रबन्ध किया। प्रथम पुस्तक तो मिल न सकी। द्वितीय पुस्तक मिली इसे पण्डित नील-कण्ठदास जी एम० ए० ने लिखा है। यह पुस्तक क्लिष्ट, काव्य चातुर्य से पूर्ण तथा एक खंड विषय को लेकर लिखी गई है। सच पूछा जावे तो खारवेल चरित्र के सम्बन्ध में यह पुस्तक भी अपूर्ण ही है। इसमें धूसी चरित्र का वर्णन है और लेखक ने इस कथाको भी खारवेल नाम देकर द्वितीय विभाग में पूर्ण करने की इच्छा ज़ाहिर की है। इसके पूर्व हमने स्वर्गीय श्री पं० कृपासिंधु मिश्र जी एम० ए० के लिखित उत्कल इति-हास का पठन किया था। वहां पर हमने खारवेल चरित्र पढ़ा था। इससे हमने स्थिर किया कि अगर उसी पुस्तकका

आंशिक अनुवाद निकाला जावे तो उत्कल और प्राचीन कलिङ्ग के वर्णन के साथ खारवेल चरित्र भी लिखा जाकर अनुरोध रक्षा और वचन की पूर्त्ति होसके और कटक वाले श्रीयुत कपूरचन्द कन्हैय्यालाल जैन बन्धुओं के भी इसे समर्थन करने पर हमने ऐसा ही किया।

खारवेल चरित्र द्योतक कोई पूर्णाङ्ग ग्रंथ उत्कल वा अन्य भाषा में अप्राप्य है। केवल शिलालेख के आधार से ही कुछ चरित्र लिखा जा सकता है और इस पुस्तक में भी वही बात है। औपन्यासिक ढंग से तथा कुछ कपोल कल्पना युक्त करने से अलबत्ता खारवेल जीवनचरित्र की एक छोटी पुस्तक बन सकती है। किन्तु यह हमारी समझ में अनेक अंश में मिथ्या प्रमाणित होगी और इस तरह कुछ असिद्ध बातें लिखने का साहस करना हम सरीखे अल्पज्ञों को बहुत कम शोभनीय होगा। इसीसे यह वास्तविक घटनाओं से पूर्ण और इतिहास सिद्ध पुस्तक लिख कर प्रकाशित की गई। प्राचीन कलिङ्ग का कुछ वर्णन इस पुस्तक में रहने से और खारवेल चरित्र लिखना मुख्य उद्देश होने से इस पुस्तक का नाम प्राचीनकलिङ्ग या खारवेल रक्खा गया है। इससे खारवेल चरित्र के वर्णन के साथ साथ खारवेल के पूर्व और परवर्ती काल की कुछ ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन जान सकेंगे।

यह स्वर्गीय श्रीमान् पण्डित कृपासिन्धु मिश्र एम० ए० के उत्कल भाषा में लिखित उत्कल इतिहास के कुछ अंश का

एक प्रकार छायानुवाद है। हां, इसमें सिर्फ एक दो जगह में कुछ बात जोड़ी गई है, किन्तु यह भी केवल नाममात्र ही; और श्रीमान् पण्डित नीलकण्ठदासजी एम०ए० लिखित 'धूसी चरित्र' पुस्तक के सारांश यानि विषय परिचय को भी अनुवाद जोड़ दिया गया है। क्योंकि उत्कल इतिहास में इन बातों का अभाव था। यह उत्कल इतिहास भी हाल ही में प्रकाशित हुआ है और उड़ीसा के लिये तो यह एक दम नवीन ही है। स्वर्गीय पण्डित कृपासिन्धु मिश्र के सम्बन्ध में कुछ कहना मानो सूर्य्य को दीपक दिखाना ही है। हां, केवल इतनाही कहना बस होगा कि वे उड़ीसा में एक प्रसिद्ध इतिहास लेखक थे और गंभीर गवेषणा पूर्वक ऐतिहासिक तत्व प्रकाशित करनेमें उनकी यथेष्ट विचारणीयता और परिगम्यता थी। उन्हीं की शेष जीवनी के कार्य्य स्वरूप यह उत्कल इतिहास है। इतने कहने का सारांश यह है कि इस पुस्तक में और किसी प्रकार शंका करने का स्थान ही नहीं है और होगा तो भी बहुत कम। अतएव यह सब प्रमाणित बातें आदरणीय होंगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

इस छोटी सी अनुवादित पुस्तक को प्रकाशित करने में भी हमें कार्य्यबाहुल्यवशात् अत्यधिक विलम्ब हुआ है, ता० ११-११-१९२६ को हमने इसकी पूर्ति की। अनन्तर इसे श्री० शीतलप्रसादजी के पास पसन्द करने भेजा, जो पसन्द होकर वापस आने पर सुन्दर कापी की गई। इन सब बातों में भी

विलम्ब हुआ। श्रीयुत ब्रह्मचारीजी ने तथा श्री० कामताप्रसाद जी जैन (एम०आर०एस० सम्पादक 'वीर') ने इसे पाठ कर हमारे पास अनुग्रह पूर्वक कुछ नोट भेज दिये थे, जिससे हम कृतज्ञताज्ञापन कर उन्हें आन्तरिक धन्यवाद प्रदान करते हैं। अवश्य उनके नोट के अनुसार हम कुछ बातों के पालन करने में असमर्थ रहे, तथापि उनके नोट को प्रकाशित करना उचित समझ हमने अन्यत्र प्रकाशित कर दिया है, इस पुस्तक से कुछ भी लाभ हो सका तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे। आशा है कि इसके प्रति लोगों का आदर होगा।

जिस देश में साहित्य चर्चा का ही एक प्रकार अभाव सा हो, उस स्थान में हम श्री० करोड़ीलाल मुन्नालाल जी जैन बंधुओं को साहित्य सेवा करने की ओर अग्रसर होते देख कर अधिक प्रसन्न हैं, सचमुच यदि उनके बराबर उत्साह देने वाले एक दो धनी पुरुष मिल सकें तो यहां के नगण्य लेखकों को कुछ उत्साह अवश्य मिल सकेगा और इस प्रकार से अनेकांश में लाभ होना संभव है। ईश्वर उन्हें सुबुद्धि देवें और दीर्घजीवी बनाकर इनके द्वारा उपकार कार्य्य साधन कराते रहें।

सचमुच में हम श्री० कपूरचन्द कन्हैय्यालाल जी जैनबंधु कटक वालोंके भी भारी कृतज्ञ हैं, जिन्होंने इस पुस्तकको अनुवाद कर प्रकाश करने की अनुमति मूल लेखक स्वर्गीय श्री० पं० कृपासिंधु मिश्र जी के भाई श्री० पं० हरिहर

दास जी वकील कटक वालों से लेने का अनवरत परिश्रम किया और इसे शीघ्र प्रकाशित करने के लिये लिखते ही रहे। अनुमति समय पर देने के लिये हम श्री पं० हरिहर दास वकील साहब के भी कुछ कम कृतज्ञ नहीं हैं और उन्हें भी हम अपना आन्तरिक धन्यवाद प्रदान करते हैं। साथ ही बाबू रतनलाल जी जैन को भी हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं, जिनने इस पुस्तक के सम्बन्ध में बहुत से कार्य्य उत्साह के साथ किये हैं। इनके अतिरिक्त बाबू गौरहरी पटनायक को भी हम धन्यवाद देते हैं, जो हमें निरन्तर इसको पूर्ति करने के लिये तक़ाजा करते रहे और प्रथम ही श्री० करोड़ीलाल मुन्नालाल जी जैन को हमारे लिख सकने की योग्यता बतलाकर उनका अनुरोध पत्र हमें दिया था। इस पुस्तक को सुन्दर पाण्डुलिपि शीघ्र ही लिख देने के लिये पं० गोविन्ददास मास्टर, बाबू लक्ष्मीनाथ मास्टर तथा बद्रीप्रसाद मास्टर भी धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रेस सम्बन्धी भूल कदाचित हो जावे तो कृपाकर विद्वान पाठक पाठिका लोग स्वयं संशोधन कर बाधित करेंगे। इस अरण्यवासी नगण्य लेखक की क्षुद्र कृति कदाचित आदरयोग्य और मनोरंजन की सामग्री हो सकी तो फिर कभी नूतन भेंट कर सकनेके लिये उसका सहसी होना कोई असम्भव नहींहै।

जगदलपुर, बस्तर स्टेट
२५-२-१९२७

विनीत—
पुराणरत्न गंगाधर समन्त शर्मा
"कवि-बाल"

ज्ञातव्य

विदित हो कि यह पुस्तक केवल पूज्य जैनधर्मभूषण, धर्म दिवाकर, ब्रह्मचारी श्रीशीतलप्रसादजीके प्रकाशित अनुरोधका ही फल है। इस पुस्तकके संबंधमें कुछ न कहकर केवल इतना ही कहना है कि स्वयं पाठक पाठिकायें इसे आद्यन्त पढ़कर इसकी उपादेयता का अनुमान कर लेवें। अगर जैन समाज को इससे थोड़ा सा भी लाभ पहुंचा तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे। आशा है कि समाज इसे अपनाकर हमारे परिश्रम को सफल करेगी।

इस पुस्तक को प्रकाशित करने का सम्पूर्ण खर्चा श्रीमती सरदार बहू (धर्मपत्नी सेठ करोड़ीलालजी) वो श्रीमती छोटी बहूजी (धर्मपत्नी सेठ मुन्नालालजी) ने "परवारबंधु" के ग्राहकों को उपहार में देने के लिये स्वीकार किया है। इस समयानुकूल दानके लिये हम उनके विशेष कृतज्ञ हैं। आशा है कि समाज की और महिलाएं भी इनका अनुकरण करेंगी। हमारी श्री जिनराजदेव से प्रार्थना है कि इन्हें चिरायु करें वा सुबुद्धि देवें ताकि और भी ऐसे उपयोगी कार्य इनके द्वारा होते रहें।

हमें यह लिखते परमहर्ष होता है कि हमारे अनुरोध को स्वीकार कर श्रीमान् पुराणरत्न पंडित गंगाधर सामंत जी ने

इस पुस्तक को बड़े परिश्रम के साथ-कई आवश्यक कार्यों के होते हुए आनरेरीतौर पर लिख देने की कृपा की है आप जाति के उत्कल ब्राह्मण हैं तथा राजमान्य वा राजकर्मचारी भी हैं, आप विद्वान और मिलनसार व्यक्ति हैं, आपने अब तक कई छोटी २ पुस्तकें लिखकर प्रकाशित की हैं वा आपको लेख लिखने वा कविता करने का बड़ा शौक है। आप यहांके एक होनहार साहित्यसेवी नवयुवक हैं, आपके इस परिश्रम के लिये हम तथा समाज उनकी चिरऋणी है-तथा हम इन्हें अन्तःकरण से कोटिशः धन्यवाद देते हैं। हमारी हार्दिक भावना है कि ये चिरायु होकर साहित्य सेवा में अग्रसर होवें।

श्रीमान बाबू कपूरचन्द कन्हैयालालजी जैन परवार कटक निवासी को हम अनेकानेक धन्यवाद देते हैं कि जिन्होंने कई उड़िया पुस्तकें भेजीं वा बाबू हरिहरदास वकील से पुस्तक प्रकाशन की आज्ञा प्राप्त करने में कष्ट उठाया, इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

मिती चैत्र कृष्णा ८
२६-३-१९२७

जैनधर्म का तुच्छ सेवक—
रज्जूलाल जैन परवार, जगदलपुर
(पुत्र हंसराज जैन, सागर निवासी)

संक्षिप्त परिचय

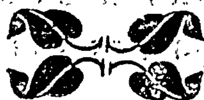
श्रीमान् सेठ करोड़ीलालजी, मुन्नालाल जैन परवार

जयसिंहनगर जिला सागरमें एक अच्छा कस्बा है, वहां पर मोदी घासीलालजी रहते थे। उनके ४पुत्र वा १पुत्री थी। पुत्रों के नाम बट्टूलाल जी, लटोरेलाल जी, गोरेलाल जी, कारेलालजी वा पुत्री का नाम नत्थूबाई है। चारों भाई इकट्ठे रहकर व्यापार करते थे। इन्होंने जयसिंहनगर में १ जिन मंदिर जी भी बनवाया था, जो मंदिर आजतक विद्यमान है। बट्टूलाल जी के २ पुत्र कन्छेदीलाल जी, हंसराज जी वा १ पुत्री हुई। बा० लटोरेलालजीके ४ संतान हैं। दो पुत्र करोड़ी लाल, मुन्नालाल वा २ पुत्री हैं, वाको दो भाइयों के संतान पुत्रियां हैं। बट्टूलाल जी के वंश में हंसराज का लघुपुत्र रज्जूलाल है और १ पुत्री है। लटोरेलाल जी के २ पुत्र करोड़ी लाल जी मुन्नालाल जी हैं। करोड़ी लाल जी के ५ संतान हैं-२ पुत्र वा ३ पुत्रियां वा मुन्नालाल जी के ३ संतान हैं २ पुत्र वा १ पुत्री।

करोड़ीलाल जी यहां ३० वर्ष के लगभग हुए आये थे- पहिले पहल ये स्कूल में मास्टरी करने लगे, कुछ दिनों वाद

नौकरी छोड़ रोजगार करना शुरु किया-ईश्वर की कृपा वा भाग्यवश इनका व्यापार दिनों दिन बढ़ता ही गया-कुछ वर्षों के बाद इन्होंने देश से अपने कुटम्बी, वा रिश्तेदारों को भी यहीं पर बुला लिया। आजकल यहां के प्रसिद्ध व्यापारी हैं-इन्हीं के घर में चैत्यालय भी स्थापति है, आप यहां की जैन समाज के अग्रसर हैं। इनके लघुभ्राता मुन्नालाल जी धर्मात्मा वा नम्र स्वभाव के हैं तथा गजट आदि पढ़ने का बड़ा शौक है। इन दोनों भ्राताओं की धर्म पत्नियां भी बड़ी धर्मात्मा हैं। उन के द्रव्य की सहायता से यह ऐतिहासिक पुस्तक प्रकाशित हो कर परवारबन्धु के ग्राहकों को उपहारमें बांटी जा रही है। श्री जिनराजदेव से हमारी कर जोड़ विनय है कि आप सकुटुम्ब चिरायु होवें ताकि ऐसे उपयोगी कार्य होते रहें-इत्यलम्-

शुभाकांक्षी—रज्जूलाल जैन परवार,
जगदलपुर (वस्तर स्टेट)



श्री परमात्मने नमः

समर्पण

जैनसमाज के नेता, धर्म और जातिसेवा में लव-
लीन और धर्म तथा समाज की निरन्तर
उन्नति के इच्छुक, पूज्यवर पंडित
धर्मदिवाकर, ब्रह्मचारी

श्री शीतलप्रसाद जी जैन

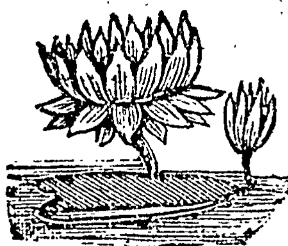
आनरेरी सम्पादक--"जैनमित्र" और "वीर"

मान्यवर !

यह पुस्तक केवल आपके अनुरोध, उत्साह तथा आशीर्वाद से निर्मित कराई जाकर प्रकाशित की गई है, अतएव यह आपके ही करकमलों में सादर सप्रेम समर्पित है। आशा है, कि आप इसे स्वीकार कर कृतज्ञ करेंगे, तथा समय २ पर ऐसे समाजसेवा के कार्यों में उत्साह देते रहेंगे

आपके कृपाकांक्षी—

करोड़ीलाल मुन्नालाल जैन परवार,
जयसिंहनगर (सागर)



ॐ

परमात्मने नमः

प्राचीन कलिंग

या

खारवेल



प्रथम अध्याय

प्राचीन कलिंग

अति प्राचीनकाल में बहु विभव पूर्ण और वीरत्व से युक्त कलिंग नाम का एक बृहत् राज्य था। वह कलिंग राज्य साधारणतः तीन भाग में विभक्त था*। दक्षिणी विभाग को दक्षिण कलिंग, तृतीय विभाग या मुख्यकलिंग, मध्यविभाग को कलिंग या मध्यकलिंग तथा उत्तर विभाग को उत्तरकलिंग या उत्कल देश कहते थे।

---

*किन्हीं किन्हीं भारतीय शास्त्रकारों ने कलिंग और उत्कलको दो विभिन्न देश माना है। इस संबंध में श्रीयुत शीतलप्रसाद जी ब्रह्मचारी तथा बाबू कामताप्रसाद जी के नोट अन्यत्र पढ़ें।

उत्तर कलिंग था उत्कल देश प्राचीन काल में इतना ही नहीं था जिसे कि वर्तमान उड़ीसा या उत्कल कहते हैं, किंतु इससे अत्यधिक विस्तार में था। राजनीति सूत्र में कभी २ कलिंग के ये तीन विभाग परस्पर पृथक् २ भी रहते थे। वंशधारा नदी के किनारे से लेकर दक्षिण में गोदावरी नदी तक के समस्त देश दक्षिण या मुख्य कलिंग कहलाते थे और कलिंग पत्तन या कलिंग पाटणापुरी इसकी राजधानी थी। ऋषिकुल्या नदी से लेकर वंशधारा नदी तक के भूभाग को मध्य कलिंग कहते थे और इसकी राजधानी समापपुरी थी, जिसे वर्तमान जौगढ़ कहते हैं। कोई २ इसकी राजधानी वर्तमान सोमपेण्ढा को भी बतलाते हैं। उत्तर कलिंग या उत्कलदेश ऋषिकुल्या नदी से आरम्भ होकर उत्तर में गंगा नदी के किनारे तक वर्तमान सिंहभूमि, मेदिनीपुर और बाकुड़ा जिला को लेकर व्याप्तमान था। इसकी राजधानी वर्तमान भुवनेश्वर निकटवर्ती खण्डगिरि और धौली के मध्यवर्ती स्थान "एक प्रस्तर" या तोसाली थी। जैसे पहिले कह चुके हैं कि कलिंग राज्य के उपरोक्त त्रयभाग यद्यपि राजनैतिक सूत्र में अथवा किसी राजा के राजत्वकाल में परस्पर से पृथक् रहते थे, तथापि यह पार्थक्य अल्प समय के लिये ही रहता था। इतिहास में यह सम्पूर्ण भूखण्ड कलिंग वा कभी २ त्रिकलिंग के नाम से परिचित होता था!

पुराणों में वर्णन है कि सुद्युम्न राजा के तीन पुत्र, गया, उत्कल और विनिताश्व यथाक्रम विहार, उत्कल और पश्चिमांचल में राज्य करते थे, इससे प्रमाणित होता है कि गया और उत्कल परस्पर सन्निकटवर्ती राज्य थे। गयासुर उपाख्यान के अनुसार गया गयासुर का मस्तक और जाजपुर उसका नाभिस्थल था। इससे यह भी अनुमान होता है कि उत्कलदेश गया से लेकर गोदावरी तक व्याप्तमान था और जाजपुर उसका मध्यभाग था और पौराणिक वचन के अनुसार यह उत्कलदेश अवश्य कुछ काल के लिये कलिंग से पृथक् रहा होगा। कालान्तर में यह राज्य कलिंग राजाओं के प्रभाव से उसमें सम्मिलित होकर कलिंगोत्कल नामक एक विराट राज्यमें परिणित होगया। परिशिष्टमें उत्कल राजाओंके प्रभाव से कलिंग राज्य का नाम इतिहास से लोप होकर समग्र देश उत्कल नाम से परिचित होने लगा और उत्कल देश के राजा लोग 'त्रिकलिंगाधिपति" उपाधि से अपना परिचय देने लगे।

यह उत्कल या कलिंग राज्य उत्तर में गंगा नदी और गया से आरम्भ होकर दक्षिण में गोदावरी नदी तक विस्तृत था। इसके पूर्वमें बंगाल सागर और पश्चिम में अस्मक देश (महाराष्ट्र भाषीप्रदेश) मेखल पर्वत श्रेणी, अमरकन्टक पर्वत, गोंडवानाराज्य और मेखल प्रदेश (मध्यप्रदेशान्तर्गत सिरगुजा, यशपुर, उदयपुर प्रभृति) थे, सुतरां मध्यप्रदेशस्थ

छत्तीसगढ़ मध्यवर्ती महानदी के उद्‌गम स्थान सिहावा, सिंहपुर और तन्निकटवर्ती श्रीपुर (राजिम) और शिवरी-नारायण आदि देश तथा सिंहभूमि, बाँकुड़ा और मेदनीपुर जिले प्राचीन ताम्रलिप्ति राज्य के सहित कलिंग वा उत्कल देश के अन्तर्भुक्त थे ।

यह सब जिस समय की बात कही जाती है, इतिहास के उस प्रथमावस्थामें उड़ू वा उड़ीसा नामक कोई देश नहीं था। उड़ू एक जाति थी । यह जाति कलिंग के पश्चिम प्रान्त में निवास करती थी । उड़ू लोग आर्य्य जातीय थे। आर्य्य लोगों में से जो लोग पहिले कलिंग में आये और कलिंग देशीय आदिम निवासी अनार्य्यों के साथ तथा दक्षिणी द्राविड़ लोगों के साथ मिल गये, वे लोग आर्य्यों की दृष्टि से पतित होगये। इसीसे मनुसंहिता में उड़ू लोगों को पतित क्षत्रिय लिखा है। अनन्तर जब नूतन आर्य्य लोग कलिंग में आकर बसने लगे, तब उन लोगों ने उड़ू जाति को वहां से निकाल बाहर किया। तब वे उड़ू लोग विसाल पटना की मालभूमि जयपुर, बस्तर तथा अन्यान्य पहाड़ी स्थानों में निवास करने लगे। बहुकालान्तरमें ये सब अञ्चल उड़ूवादी प्रदेश या उड़ूदेश कहलाने लगा। उड़ू लोग पतित होने पर भी क्षत्रिय थे। युद्ध विद्या सीखना उनकी परंपरा वृत्ति थी। वर्तमान जयपुर प्रभृति स्थानों में निवास करने वाले उड़ू लोगों को पाइक वा उड़ू कहते हैं। बस्तर स्टेट में उन्हीं लोगों को हल्बा कहते हैं।

ये लोग पतित क्षत्रिय हैं। वस्तुतः महाराजा साहब के साथ ये लोग अद्यावधि भी मुक्त खड्ग हाथ में लेकर रक्षक स्वरूप रहा करते हैं। और अपने पुरातन क्षत्रियत्व का परिचय देते हैं। इनकी प्रगाढ़ राजभक्ति अब भी भग्नांशमें देखी जाती है। सचमुच में ये लोग पुराकालीन वीर सैनिक हैं। यही हल्वा लोग अब भी दशहरा पर्व में पूर्वराजाओं की कीर्ति गान कर नृत्य करते हैं। इससे प्रमाणित होता है कि ये लोग चारण के कार्य भी करते थे। पुरातनकाल में यही उड्र लोग उत्कल देशीय समस्त राजाओंके प्रधान सैनिक थे। गंगवंशीय राजाओं के समय यही उड्र लोग बहुपरिमाण में उत्कल सेनामें भरती हुए और उन राजाओं के साथ में आकर खुरधा अञ्चलमें निवास करने लगे मुसलमान लोग जिस सैन्य के साथ तीन सौ वर्ष युद्ध करके भी बारम्बार परास्त होते थे, वे लोग साधारणतः उड्र रहने के कारण उनके नामानुसार मुसलमान लोगों ने कलिंग या उत्कलको उड़ीसा नाम दिया। भोई वंशीय राजा लोग गंगवंशीय राजाओं के उत्तराधिकारी हुए और खुरधा राज्य भोग करने लगे। वहां पर उड्र सैनिक लोग बहु-संख्या में निवास करने के कारण खुरधा अब भी लोगों में उड़ीसा नाम से परिचय पाता है।

दक्षिण कौशल—उत्कल इतिहास में दक्षिण कोशल नामक एक राज्य रहना भी पाया जाता है। किन्तु कोशल राज्य कलिंग राज्य के समान उतना पुरातन राज्य नहीं है।

अनुमान होता है कि बुद्धदेव के समय या इनके कुछ काल के अनन्तर कौशल नामक एक राज्य संस्थापित हुआ। पहिले यह राज्य कलिंग और विंध्याचल पर्वत के मध्य में रहा। सब से प्रथम काशी कौशल नामक एक प्रधान राज्य रहा। उसके बाद यह कौशल राज्य संस्थापन होने पर इसका नाम दक्षिण कौशल हुआ। यही दक्षिण कौशल उत्कल कौशल नाम से भी परिचय पाता था। इस कौशल राज्य के साथ कलिंग वा उत्कल देश के राजाओं का घनिष्ट सम्बन्ध था।

इस कौशल राज्यकी राजधानी पहिले वर्धा नदीके किनारे चाँदा ज़िला में थी। कालान्तर में यह कौशल राज्य ह्रास होकर पूर्व में वर्त्तमान छत्तीसगढ़ में परिणत हुआ और महानदी तटस्थ राजिम (श्रीपुर) इसकी राजधानी हुई। इस कौशल राज्य के मध्य में वर्तमान छत्तीसगढ़ के रायपुर, विलासपुर प्रभृति जिले और इब, मण्ड, हेस्थो, हाम्फा, इरास्ता तथा शिवनाथ आदि महानदी की उपनदियां प्रवाहित होती थीं। खीष्ट पंचम शताब्दि में कौशल राजा लोग उत्कल राजसिंहासन में आरूढ़ हुए और इसके कुछ कालके अनन्तर कौशल नामक स्वतंत्र राज्य नहीं रहने पाया।

सीमा—यह विशाल उत्कल राज्य क्रमशः छिन्नविछिन्न एवं खण्ड खण्ड होकर वर्तमान उड़ीसा में परिणत हो गया। वर्तमान उड़ीसा की सीमा उत्तर में सुवर्णरेखा नदी, मेदिनी-

पुर, और धवलभूमि, पश्चिम में सिंह भूमि और मध्यप्रदेश, दक्षिण में गंजाम ज़िला और पूर्व में बंगाल सागर है। इसका क्षेत्रफल ४१७८२ वर्गमील है और जन संख्या ८७६६०१५ है। जिनमें ४२, २२, ४७५ पुरुष और ४५५ ३७० स्त्रियां हैं। वर्तमान उड़ीसा में ३४२२८ मौज़े और ८६३०२७ मकान हैं।

प्राकृतिक विवरण—उत्कल में साधारणतः तीन प्राकृतिक विभाग देखे जाते हैं। पहिला गड़जात (Feudatary States) वा मालभूमि, दूसरा समतलभूमि और तीसरा निम्नभूमि। गड़जात वा मालभूमि वन और पर्वतों से पूर्ण है और यहां राजा लोग राज्य करते हैं। उत्कल देश की समस्त नदियां वन पर्वतों से निकल कर वहां से नाना प्रकार की सार वस्तुएँ वहा लाकर समतलभूमि की सृष्टि करती हैं। इसलिये वह समतलभूमि विशेष उर्वर और शस्यशाली है। समुद्र निकटवर्ती निम्नभूमि केवल बालुका राशि से पूर्ण है और स्थान २ में पंकिल जमीन भी है। मुसलमानी राजत्वकाल से वर्तमान इस वन पर्वतमय देश को गड़जात और समतलभूमि को मुगलबन्दी कहते हैं।

प्राकृतिक दृश्य के हिसाब से भी उत्कलदेश एक सार भूखण्ड है। पृथ्वी में जो कुछ विचित्र दृश्य देखे जाते हैं अल्पाधिक परिमाण में वे सब उत्कलदेश में पाये जावेंगे। उच्च और लम्बी पर्वत श्रेणियां, विराट् और सुदीर्घ नदियां निबिड़ अरण्य, विशालप्रान्तर, भीषणप्रपात, सुश्यामल शस्य

क्षेत्र, ह्रद, उष्ण प्रस्रवण प्रभृति सकल प्रकार के दृश्य इस उत्कल देश में विद्यमान हैं। पूर्व कालीन उत्कल देश विशेष पर्वत नदी और जंगलों से प्रपूर्ण रहने के कारण यहां विदेशी लोग सहज में नहीं आसक्ते थे। यही कारण है कि यह देश विदेश और विजातीय आक्रमणों से बहुत दिनों तक मुक्त था। भारत के अन्यान्य प्रदेश मुसलमानों के कवल में पड़-कर जब अपनी अपनी स्वाधीनता और स्वतंत्रता को खो चुके थे, उस समय भी यह उत्कल देश प्राकृतिक किलों और प्राचीरोंसे वेष्टित होकर अपनी स्वाधीनता और सभ्यता को बहुत दिनों तक सुरक्षित रख सका था। भारतीय कला. शिल्प, साहित्य प्रभृति अब भी इस उत्कलदेश में विशुद्धरूप में विद्यमान हैं। इस सम्बन्ध में जो लोग पुरातत्व का अनु-सन्धान करने बैठेंगे, वे लोग उत्कल देशस्थ मन्दिरों और साहित्यक्षेत्र से जीवन्त दृष्टान्त पासकेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है। यही नहीं किन्तु पूर्वकालमें यह देश प्राकृतिक विभव से भी सम्पूर्ण था। हीरा, पत्थर, कोयला, सोना, तथा लोहे का खदानें इस देश के नाना स्थान में पूर्णता से पाई जाती थीं। भारतवर्ष में अन्यत्र ऐसा कोई देश बिरला ही होगा, जहां कि लोग उत्कल वासियों के सदृश प्राकृतिक विभव से पूर्ण होकर चिरशान्ति भोग करते हुए भारतीय सभ्यता को स्वतंत्रभाव से बढ़ा सके हों।

———.———

द्वितीय अध्याय



अधिवासी

अनार्य्य जाति—आर्य्य लोगोंके आगमन के पूर्व उत्कल या कलिंग देश अनार्य्यों का निवास स्थान था। आर्य्य लोगों ने यहां आकर अनार्य्यों को जङ्गली भूखण्ड की ओर भगा दिया और स्वयं उर्वर तथा समतल क्षेत्रों में अपना अधिकार जमा लिया। उन अनार्य्यों में से कितने तो आर्य्यों की आधीनता स्वीकार कर भृत्यरूप से उनके साथ रहने लगे। किन्तु अधिकांश अनार्य्य लोग आर्य्यों की आधीनता स्वीकार न कर बर्तमान गड़ाजातों (Feudatary State) वनपूर्ण पार्वतीय स्थानों में निरापद रहना हितकर समझ उन्हीं स्थानोंमें चले गये। जिन अनार्य्य लोगों ने आर्य्यों की आधीनता स्वीकार की; उनमें से-कण्डर, कन्दल, डोम, चमार पाण, बाउरी, खड़रा, घुसुरिया भूंय्यां, मेहतर, शअर इत्यादि जातीय लोग प्रधान माने जाते हैं।

इन लोगों ने आर्य्यों के साथ रह कर आर्य्य सभ्यता सीखी। हिंदुओं के देवी देवताओं में इनका विश्वास है और इन लोगोंका सामाजिक तथा पारिवारिक जीवन हिन्दू आदर्श में ही ढला है। पौरहित्य प्रथा भी इन लोगों में पाई जाती है।

यहां तक कि मेहतर प्रभृति जातीय लोग अपने बीच में कितनो को ब्राह्मणवत् मानकर उन लोगो से पौरोहित कार्य्य चलाते हैं। पाण, कराडरा प्रभृति जातीय लोग स्वजातीय वैष्णवों के द्वारा पौरोहित कार्य चलाते हैं।

यद्यपि इन लोगों को अद्यावधि तक जगन्नाथ मन्दिर में प्रवेशाधिकार नहीं है। तथापि जगन्नाथ तथा अन्यान्य देवी देवताओं पर इनकी प्रगाढ़ भक्ति कुछ कम नहीं है। इन लोगोंके लिये जगन्नाथ मन्दिरके सिंहद्वारमें दर्शन सुविधा हेतु पतित पावन मूर्ती संस्थापित है। जगन्नाथजी के दर्शनके लिये उन्हें विशेषसुविधा रथयात्रा और स्नान यात्राके दिन मिलती है। पाण जातीय लोग इन रूपों में निकृष्ट श्रेणीय हैं। यहां तक कि कंध जातीय लोग इन लोगों से अपने यहां मेहतर का काम लिया करते हैं। जिस समय नरबलि की प्रथा प्रचलित थी कंध लोग पाण जातीय किसी एक बालक को भूमि माता के लिये नर बलि दिया करते थे। समुद्र किनारे जो केंवट या कैवर्त्त जातीय लोग निवास करते हैं उन्हें पूर्व में आर्य्य लोग म्लेच्छ कहते थे। यही लोग प्राचीन अधिवासी कहे जाते थे। कालान्तर में अनार्य्यों के बीच में कैवर्त्त जातीय लोग (नोलिया) उन्नत हो चले। आर्य्यों के प्रभाव से ताड़ित होकर जिन अनार्य्य लोगों ने जंगलो और पहाड़ी स्थानो में निवास किया उन लोगो में कोल, कंध, सान्ताल, सूया, डुआंग, मुण्डा, मुरिया, † भतरा,

† पूज्यवर पं० केदारनाथ जी ठाकुर अपने "वस्तर भूषण" नामक गृंथ,

परजा इत्यादि जातीय लोग प्रधान हैं। आदिम अवस्था में ये लोग नंगे हो कर रहते थे। क्रमशः आर्य्य प्रभाव में आने से इन लोगों ने कपड़ा पहिनना सीखा। अबभी केन्दुझर, ढेंका नाल, हिन्दोल, वस्तर, प्रभृति गड़जात अंचलों में जुआंग और आदि माड़ प्रभृति कितने लोग कपड़ा नहीं पहिनते। जंगली कंद, मूल, फल, और शिकार द्वारा प्राप्त मांस इनमें से अनेकों का प्रधान खाद्य है। सान्ताल, कंध, भुंइया, प्रभृति कितनी जाति के लोग कुछ काल से खेती करते हैं। हिन्दू देवी देवताओं में इन लोगों की बहुत कम भक्ति है। किन्तु क्रमशः इनमें भी भक्ति का प्रसार होना पाया जाता है। कोई कोई जातिके लोग अब हिन्दू पर्व मानना भी आरम्भ कर चुके हैं। कुछ काल पूर्व में इन लोगों में नरबलि की प्रथा प्रचलित थी। किन्तु अंग्रेजी राज्य के आरम्भ से ही इनकी यहप्रथा बिलकुल बन्द कर दी गई है। राज्यके राजाओंमें इनकी भक्ति अटूट है। केन्दुझर राज्य में अब तक यह प्रथा है कि नूतन राजा अब भी एक बूढ़े भुंइयां की गोद में बैठ कर अभिषिक्त होते हैं। ये लोग बड़े

में लिखते हैं, कि वस्तर में उड़ियान से निम्न लिखित जातियां आयें हैं:—

(१) सुण्डी (२) हजार (३) पनाग (४) गौड़ अर्थात राउत (५) खवरा (६) धोबी (७) नाई (८) टड़िया (९) परन (१०) नाइक पोड़ (११) पानर (१२) घसिया (१३) पंडा ब्राह्मण (१४) कुदार ब्राह्मण।

(वस्तरभूषण पृष्ट ३०)

सत्यनिष्ठ हैं। पाप और मिथ्या को तो ये बिलकुल सह नहीं सक्ते। किन्तु अब वर्तमान सभ्यता के प्रवाह में आकर कितने लोग झूठ बोलना भी सीख चुके हैं। इन लोगों का समाज बंधन बहुत ही कठिन है। यहां तक कि छोटे बड़े सभी दोष के लिये दोषी का सिर काट देना तो इनका बिलकुल सहज और साधारण दण्ड है। किसी भी अन्याय के विरुद्ध में सम्मिलित आन्दोलन उठाना भी इन लोगोंके पक्ष में सहज है। इन लोगों में अतिथि सत्कार बहुत ही विचक्षण है। इन के ग्राम में कोई भी अतिथि आकर पहुंचे तो समग्र ग्रामवासी उसकी सेवा करनेके लिये तत्पर रहते हैं। तीर, बरछी, फरसी और कुल्हाड़ी इन लोगों को प्रधान शस्त्र हैं। जीव जन्तुओं के शिकार में इनका प्रेम बहुत भारी है।

उड़ जाति—इस उत्कल या कलिंग देशमें प्रथम आर्य्य बस्ती उड़ जातीय लोगोंके द्वारा ही प्रारम्भ है। उड़ लोगोंको मनुसंहितामें "पतित क्षत्रिय" कहा गया है और इनकी समानता पौण्ड्र तथा द्रविड़ जातियों से की गई है। ऋग्वेद में कलिंग देशका परिचय मिलता है। किन्तु उड़ यह नाम पाया नहीं जाता। ऋग्वेदीय काल में उड़ जातीय कलिंग में नहीं थी। रामायण में उड़ कलिंग और उत्कल ये तीनों नाम पाये जाते हैं। इससे यह पाया जाता है कि रामायण के पूर्वमें उड़ जाति ने कलिंग में निवास किया। उड़ लोग आर्य्य क्षत्रीय थे, किन्तु बहुकाल से कलिंग के अनार्य्यों के साथ रह जाने से

पौरड्र और द्राविड़ लोगों के संपर्क में रहने से उनकी धर्म और सभ्यता बहुपरिमाण में मिश्रित होगई। इसी से मनुजी ने उनको संस्कारहीन पतित क्षत्रीय कहा है। उड्र लोग क्षत्रीय थे और युद्ध विद्या में निपुण थे। जैसे ही वे लोग कलिंग में पहुंचे उन्होंने अनार्य्यों को परास्त कर जंगल और पर्वतों की ओर भगाकर उर्वर और समतल भूमि में अपना अधिकार जमा लिया और वहीं निवास करने लगे। कृषि विद्या में उड्र लोग बहुत निपुण थे। और आजकल भी उन्हीं के वंशधर लोग इस देश में प्रधान कृषक माने जाते हैं। उत्कल देश जब स्वाधीन था उस वक्त उड्र लोग इस देश के प्रधान सैनिक थे। और विशेष कर मुसलमानों के साथ में युद्ध करते थे। इसी से मुसलमान लोगोंने इस देशका नाम 'उड़ीसा' रक्खा। उड्र लोगों के इस देश में निवास करने के बहुत काल पश्चात् अन्य एक दल आर्य्य यहां निवास करने के लिये आये। उन लोगों ने भी पतित उड्र लोगों को जंगल तथा पर्वतीय स्थानोंमें भगा कर उर्वर क्षेत्रों में अपना अधिकार जमा लिया। इस तरह से उड्र जातीय लोग विताड़ित होकर पश्चिमांचल में निवास करने लगे और इस तरह से वर्त्तमान जयपुर, वस्तर और रायपुर अंचल उड्र लोगोंका निवास स्थान हुआ। महाभारतकाल में यही भूभाग "उड्र देश" कथित हुआ। महाभारत में उड्र राजा का पाण्डव लोगों को हाथी दाँत उपहार में देना वर्णित है। इन उड्र लोगों की कृषि और युद्ध विद्या प्रधान

जीविका थी। अनन्तर गंग वंशीयराजा लोग समग्र कलिंग के राजा होने से उड़ू सेना उत्कल में आई और भोई वंशीय राजाओं के समय खुरधा राजधानी होने से वही उड़ू लोग वहीं निवास करने लगे। इस समय भी उड़ू जातीय लोग, जयपुर गंजाम, वस्तर प्रभृति स्थानों में पाये जाते हैं।

आर्य्य आगमन—उड़ू लोगों के वहुतकाल इस देश में निवास करने के अनन्तर फिर और कुछ आर्य्य लोग वहां आये और निवास करने लगे। यह ठीक नहीं कहा जासकता कि ये लोग किस समय के लगभग यहां आये। किन्तु महाभारत को देखने से यह मालूम होता है कि शुद्ध आर्य्यजाति महाभारत रचने के पूर्व कलिङ्ग देश में निवास करती थी। विद्वानों के मतमें महाभारत युद्ध सन् ईस्वी से २००० वर्ष पूर्व में होना माना जाता है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि सन् ईस्वी से २००० वर्ष पूर्व के पूर्व किसी समय में कलिङ्ग देश में विशुद्ध आर्यों का निवास स्थान वन चुका होगा। वुद्धदेव के गृही शिष्यों में सवसे प्रथम तपुसा और वल्लिक नामक दो व्यक्तियोंने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया था। वे दोनों उत्कल वणिक थे। वे लोग ५०० गाड़ियों में वाणिज्य पदार्थ लादकर मध्यदेश की ओर व्यापार करने जा रहे थे। रास्ते में उन लोगों ने वुद्ध गया में वुद्धदेव को देखा और वहीं शिष्यत्व ग्रहण किया। वे लोग विशुद्ध आर्य्य थे। अनन्तर अशोक के विजय के साथ साथ उत्तर देश से वहुत

से आर्य्य इस देश में आये और बौद्ध प्रचारक लोग स्वमत का प्रचार भी इस देशमें करते थे। ये सब आर्य्य लोग भी इस देश में आकर उड्र द्राविड़ और अनार्यों के साथ रहनेसे अपना आचार व्यवहार इतना शुद्ध न रख सके थे। इसके अनन्तर खीष्ट ६ वीं शताब्दि में राजा ययाति (केसरी) के समय में यज्ञादि ब्राह्मण कर्म के कराने के निमित्त कान्यकुब्ज विशुद्ध आर्य्य ब्राह्मण लोग इस देश में लाये गये। यही ब्राह्मण लोग श्रोत्रिय ब्राह्मण कहला कर इस देश में निवास करने लगे कालान्तर में उत्कल ब्राह्मण लोग वासस्थान के अनुसार दो प्रधान विभाग में विभक्त होगये। जो ब्राह्मण लोग जाजपुर निकटवर्ती स्थानों में निवास करने लगे वे लोग "जाजपुरोश्रीय" और जो लोग जाजपुर आकर दक्षिण में निवास करने लगे; ये लोग "दक्षिणोत्रीय" ब्राह्मण कहलाने लगे। प्रत्येक यह दो विभाग फिर श्रोत्रीय या वैदिक और अश्रोत्रीय या अवैदिक इन दो विभाग में विभक्त हुए। श्रोत्रीय श्रेणीय ब्राह्मण (शासनी ब्राह्मण) लोग राजाओं से दान जमीन इत्यादि पाकर स्वजीविका निर्वाह करने लगे। अश्रोत्रीय ब्राह्मण लोग फिर तीन भाग में विभक्त हुए।

(१) सारूआ या पनिहारी ब्राह्मण जो लोग कि घड़य्यां या अन्यान्य तरकारी इत्यादि बिक्री कर जीविका निर्वाह करते हैं।

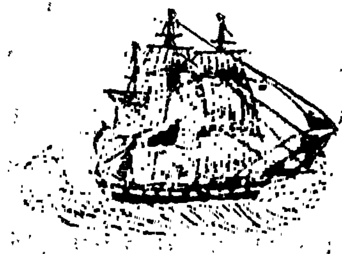
(२) पण्डा, पुजारी सुआर या देवलिया ब्राह्मण जिनका कि देवमन्दिर इत्यादि की सेवा करना प्रधान कार्य्य है।

(३) मढ़िया ब्राह्मण ये लोग निकृष्ट श्रेणीय ब्राह्मण हैं। श्रोत्रीय ब्राह्मण लोग उपरोक्त तीन श्रेणीय ब्राह्मण के साथ वैवाहिक सम्बन्ध नहीं करते। बुद्धदेव के पूर्व जो ब्राह्मण लोग उत्कल में आकर निवास करते थे उनको वर्तमान वलराम गोत्रिय ब्राह्मण कहते हैं। उपरोक्त अश्रोतीय ब्राह्मणलोग भी इन ब्राह्मणोंके साथ वैवाहिक सम्बन्ध नहीं करते। ये लोग खुद हलजोत कर खेती करते हैं। सम्बलपुर की तरफ इन्हीं ब्राह्मणों को आरण्यक ब्राह्मण कहते हैं।

पुण्यभूमि—इतिहास की प्रथमावस्था में उत्कल या कलिंग देश विशेष पवित्र देश नहीं माना जाता था। यह केवल अनार्य्यों का देश रहने से इसे एक प्रकार अपवित्र देश कहते थे। यहां तक कि उड़ लोग यद्यपि आर्य्य थे तथापि इस दे। में आकर बहुत दिनों तक अनार्य्यों के साथमें निवास कर लेने से उन्हें भी पतित क्षत्रियों में गिनाजाने लगा था। कालांतर में आर्य्य लोग अधिक संख्या में इस देश में निवास करने लगे। इससे आर्य्यसभ्यता का प्रचार अधिकता से हुआ और फिर उत्कल या कलिंग पवित्र देशों में माना जाने लगा। इस उत्कल देश में हिन्दू लोगों के परम आराध्य स्वयं देवाधिदेव

जगन्नाथ भगवान के विराजमान रहने से यह देश भारत में पुण्यभूमि रूप से पूजा पाने लगा। हिन्दुओं के चार धामों में से पुरी सर्वश्रेष्ठ धाम है। भुवनेश्वर भी हिन्दुओं का प्रधान धर्मपीठ है। इसके पूर्व में जैन लोगों का भी यह प्रधान धर्मपीठ था चार धर्म क्षेत्रों में से पुरी चक्रतीर्थ "भुवनेश्वर" शंखक्षेत्र, कोणार्क, पद्मक्षेत्र और जाजपुर गदाक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध हैं। उत्कल एक पवित्र स्थान माने जाने से भारत के प्रायः समस्त प्रधान धर्म संप्रदायी लोग पुरी को अपना आश्रय स्थल बनाए हुए हैं। श्री शंकराचार्य्य एवं श्रीरामानुज इत्यादि सिद्धसाधकों के पीठ स्थान पुरीमें हैं। पूर्व में श्रीकृष्ण चैतन्य, हरनाथ प्रभृति महापुरुष लोग श्रीक्षेत्र को अपना प्रधान लीलास्थल बनाए हुए थे। इनके अनन्तर भी कितने ही सिद्ध तपस्वी योगी और ऋषि लोग यहां आश्रय लेकर इसे पावन कर गये हैं। कोणार्कक्षेत्र पूर्व में मैत्रेयवन के नाम से ख्यात था। श्रीकृष्णचन्द्र जी के पुत्र शाम्ब यहीं सूर्यदेव की आराधना कर कुष्ठरोग से मुक्त हुए थे। और यहीं पर मित्रादि सूर्यदेव का संस्थापन कर इसे क्षेत्र रूप में परिणत कर गये। शाम्ब ने जिस चन्द्रभागा नदीमें स्नान कर मुक्ति-लाभ किया था, वह इस समय में बालुकाओं से पूर्ण हो एक प्रकार ढक गई है, किन्तु जो अवशिष्टांश बचा हुआ है वह

अबतक भी तीर्थक्षेत्र माना जाता है। उत्कल देश में इन क्षेत्रों के अतिरिक्त एकाम्रकानन, विरजाक्षेत्र या जाजपुर, वैतरणी, चित्रोत्पला तथा प्राची इत्यादि पवित्र क्षेत्र तीर्थ भूमि के रूप में समग्र भारत में आदरणीय हैं। महाभारत, ब्रह्मपुराण, स्कंधपुराण तथा पद्मपुराणादिक उत्कल को भारत के एक प्रधान पुण्य देशों में मानते हैं।



तृतीय अध्याय।

पौराणिक युग।

देशका प्राचीनत्वः—कलिंग वा उत्कल भारत में एक प्राचीन देश है, आर्य्यों के आदिम ग्रंथ ऋग्वेद में कलिंग देश का नाम पाया जाता है। रामायण में भी कलिंग और उत्कल देश का नाम पाया जाता है। श्री रामचन्द्रजी वन गमन के समय उत्कल देश में होते हुये गोदावरी तीरवर्त्ती पंचवटी में गये थे। यह प्रवाद अब तक प्रचलित है कि श्री रामचन्द्र जी उत्कल देशस्थ नाना स्थानीय देवी देवताओं और तीर्थस्थानों में उपासना और स्नान करते गये हैं। रामायण में कथित दंडकारण्य उत्कल देश से आरम्भ होकर दक्षिण की ओर व्याप्तमान था। महाराज रघु दिग्विजय के समय में उत्कल और कलिंग देश में होते हुये दक्षिणी देशों की ओर गये थे। महाभारत में कलिंग उत्कल और उड्र इन देशोंका नाम लिखा गया है। साधारणतः पंडित लोग कहते हैं कि ऋग्वेद सन् ईस्वी से ४००० वर्ष पूर्व में लिखा गया था। अगर यह सत्य-माना जावे तो कम से कम सन् ईस्वी से ६००० वर्ष के पूर्व में कलिंग या उत्कल देश भारत के अन्यान्य देशों के बीच स्वतंत्रा पूर्वक प्रतिष्ठित हुआ होगा। रामायणकाल का लेन देनी सन् ईस्वी से ३००० वर्ष पूर्व में कलिंग या उत्कल देश की सृष्टि होना प्रमाणित होगा। उड्र देश महाभारत का न क

पूर्व में संस्थापित हुआ है। स्थूलतः यह प्रमाणित होता है कि कलिंग या उत्कल देश अन्यान्य देशों की अपेक्षा पौराणिक युग में भी कुछ महिमा में कम नहीं था।

महाभारत युद्धः—कौरवों और पाण्डवों के बीच में जो महाभारत युद्ध हुआ था उसमें कलिंग सेना का कौरवों के पक्ष में रहकर युद्ध करना प्रमाणित है। भारतवर्ष के प्रायः समस्त देश के राजा लोगों ने इस महायुद्ध में अपना २ पराक्रम बतलाया था। कलिंग देशका राजा श्रुतायु (श्रुतायुद्ध) ने अपने वीरपुत्र भानुमान, केतुमान तथा शुक्रदेव को संगमें लेकर ससैन्य भीमके साथ में युद्ध किया था। कलिंग देश से ६० हजार रथ, तथा पर्वत के समान १०००० हाथी इस युद्ध में गये थे। जो समरथी लोग भीष्म के आगे २ रहकर युद्ध करते थे, उन सभो में कलिंग देश के राजा अग्रगामी थे। धृष्टद्युम्न को द्रोण के हस्त से रक्षा करने के लिये भीम ने एकाएक सात बाण मारे, उससमय द्रोण की आहत आशंका से कलिंग राजा ससैन्य भीम की ओर दौड़े। इससे कलिंग राजा और भीमके बीच में "लोमहर्षण' सग्राम हुआ। वह संग्राम उस समय 'जगत्क्षयकर' प्रतीत होता था। उस समय भीम चेदि सैन्यों की सहायता से कलिंग राजा के विरुद्ध में युद्ध कर रहे थे। कलिंग राजपुत्र केतुमान ने अपने विषाद सैन्यगणों के साथ चेदि सैन्यों पर आक्रमण किया था। चेदि लोग परास्त होकर भीम को रणाङ्गण में छोड़कर भाग गये। किन्तु इसपर भी भीम

अकातर हो बचे हुए सैन्यगणों के साथ तीक्ष्ण शर वृष्टि करते हुए वीरतापूर्वक कलिंग सैन्यों के साथ लड़ते ही रहे. इसी समय कलिंग राजा श्रुतायु और उनके पुत्र शुक्रदेव ने भी भीमपर धारा प्रहार शर निक्षेप किया। शुक्रदेव के बाण से भीमके रथके घोड़े मर गये। तब भीम अपने रथ से नीचे उतर कर गदा धारण कर युद्ध करने लगे। भीमके इस समय के निष्ठूर गदाप्रहार से शुक्रदेव और उनके सारथी मारे गये। राजा श्रुतायु ने अपने पुत्र को मृत देखकर भीम को चारों ओर से घेर लिया। भीम तब व्याकुल होकर गदा छोड़ तलवार लेकर युद्ध करने लगे। इस समय भीमने कलिंग राजा के शरवर्षण को न सम्हाल वृषभ चर्मसे अपने शरीरको आच्छादित कर लिया। फिर राजा श्रुतायु ने 'आशीवृष सदृश' और "चतुर्दशतोमर" नामक दो शर छोड़े। इन शरों को भीम ने अपनी तलवार से निवारण किया। इसी समय में भानुमान युद्ध के लिए अग्रसर हुये। उन्हें देख भीम उन के साथ फिर युद्ध करने लगे। भानुमान की विचक्षण शर वृष्टि और घोर गर्जन से प्रथम तो भीम भयभीत हो गए। किन्तु अनन्तर दृढ़ साहस कर तलवार हाथ में लेकर भानुमान के हाथी के ऊपर दौड़े। इस समय के कठोर आघातों से हाथी के सहित भानुमान आहत हो पञ्चत्व को प्राप्त हुए। इस समय तक के युद्ध में उभय सैन्यों के सैनिकों के मृत देह रणक्षेत्र में पर्वताकार में जमा हो गए। श्रुतायु राजा ने फिर अपने एक पुत्र

को मृत देखकर क्रोधान्वित हो और ६ तीक्ष्ण शर भीम के ऊपर छोड़े। इन बाणों से विद्ध भीम अधीर हो ज़मीन पर गिर पड़े। उन्हें इस तरह पड़े देखकर अशोक नामक सारथि ने और एक रथ लाकर भीम के सन्मुख उपस्थित किया। जैसे तैसे कर भीम जैसे ही रथ में चढ़े, तब उभय पक्ष से ओर बाणवर्षण होने लगा। शेष में राजा श्रुतायु, और उनका पुत्र केतुमान, तथा दो रक्षक सत्य एवं सत्यदेव असह्य बाणों से बिद्ध होकर इस युद्ध में मारे गए। राजा और राजपुत्र की मृत्यु होने पर भी कलिंग सैनिक लोग साहस के साथ युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हुए। उन लोगों के कठिन आक्रमण से फिर भीम को एक मरतबा रथ से उतरना पड़ा। पश्चात् भीम ने क्रोध से गदाघात कर २७०० कलिंग सैनिकों को मार गिराया। इस बीच में असंख्य हाथी, घोड़े इस युद्धमें स्वाहा हो चुके थे। तथापि बचे हुए कलिंग सैनिक गणों ने भीमसेन के ऊपर फिर एक बार ऐसा भयङ्कर आक्रमण किया कि उनको बचाने के लिए रक्षकस्वरूप धृष्टद्युम्न को वहां रथ दौड़ा कर आना पड़ा। यही नहीं परन्तु सात्यकि को भी इस युद्ध में भीम के पक्ष में सम्मिलित होना पड़ा। यद्यपि बहुसंख्यक कलिंग सैनिक गण इस युद्ध में मारे गए और अन्त में भीमसेन का ही विजय हुआ तथापि सात्यकि सदृश महारथी ने भी कलिंग सैनिकों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

सभ्यताः—उपरोक्त युद्ध वर्णन से उत्कल या कलिंगकी

सभ्यता और उन्नत अवस्था का उत्तम परिचय मिलता है। कलिंग राजा लोग आर्य थे। यद्यपि उनके सैनिकों में बहुत कुछ निषाद वा शवर जातीय अनार्य भी सम्मिलित थे किन्तु ये लोग आर्य्यों के सहवास से और आर्य्य सभ्यता से वा उन्नतावस्था को प्राप्त हुए थे। युद्ध में राजाकी मृत्यु हो जाने पर भी इन लोगों ने भीम सदृश वीर को भयभीत कर दिया था। इनकी युद्ध-विद्या सर्वथा प्रशंसनीय थी। महाभारतकाल से बौद्धकाल पर्य्यन्त प्राचीन ग्रन्थों में कलिंग की जो कथाएं लिखी गई हैं, इससे पुरातनकाल में कलिंग का एक उन्नत देश होना निर्विवाद सिद्ध है। स्वयं कौरवराज दुर्योधन ने कलिंग राजकन्या चित्रांगदा के साथ विवाह किया था। भारत में आर्य्य प्रभाव विस्तृत होने के पूर्व दक्षिण में द्राविड़ों के बीच ग्रामगठन और ग्रामीय जीवन बहुत उन्नत हो चुका था। कलिंग वासी आदिम आर्य्य लोग आर्य्य सभ्यता के साथ द्राविड़ सभ्यता का मिश्रणकर सभ्य संसार में शीघ्रही अत्यन्त उन्नत हो गये। पहिले आर्य्य ग्रन्थों में कलिंग देशीय आर्य्य पतित वर्णित लिखे जाते थे, किन्तु यह अनुमान होता है कुरुराज दुर्योधन के समय में कलिंग इतना पतित देश न था। अनन्तर बहु संख्यक आर्य्यों के वहां निवास करने से कलिंग क्रमशः पवित्र देशों में गिना जाने लगा।

वाणिज्य:—सचमुच में वाणिज्य ही सभ्यता का मान दण्ड है। इससे किसी भी देशकी प्रकृति, बुद्धि, कार्य्य कुश-

लता तथा रुचि इत्यादिक की उन्नति किस अवस्था में थीं, यह अनुमान किया जा सक्ता है। वाणिज्य में कलिंग देश महाभारत युद्ध से ही प्रसिद्ध हुआ। महाभारत के सभापर्व्व में यह वर्णन है कि उड्र राजाने पाण्डवों को हाथी दांत उपहार दिया था। हाथी पकड़ना, हाथी का व्यवसाय करना तथा हाथी दांत से शिल्प कार्य्य करना, कलिंग या उत्कल देशवासियों को महाभारतकाल के पूर्वसे ही मालूम था। दक्षिण में द्राविड़ लोग अति प्राचीन काल से ही वाणिज्य में कुशल थे, द्राविड़ और उनके संसर्ग से प्राचीन कलिंगवासी ये उभय वाणिज्य विद्या धुरीण थे। बुद्ध गया में बुद्ध देव को सिद्धि प्राप्त होने के अनन्तर तपुसा और वल्लिक उनके प्रथम संसारी शिष्य हुए थे। ये दोनों उत्कल वणिक थे और ५०० गाड़ियों में माललादकर मध्यदेश की ओर वाणिज्य करते जाते थे। इससे कलिंग देश की पुराकालीन वणिज्य कुशलता का अच्छा अनुमान हो सकता है। उत्कल देश की नदियाँ प्रधान वाणिज्य पथस्वरूप हैं। सन् ईस्वी से करीव ४०० वर्ष के पूर्व उत्कल वणिक लोग बड़े बड़े जहाज बनाकर सामुद्रिक वाणिज्य करते थे, ऐसा वर्णन है। न्यूनतः बुद्ध देव के पूर्व उत्कलवासी सामुद्रिक वाणिज्य में प्रवीण थे, यह अनुमान होता है।

अध्याय चौथा



नन्दराजत्व ।



(खीष्ट पूर्व ३७०—३२२ अब्द)

नंदों के पूर्ववर्ती राजवंशः—पुराणों में कथित है कि महाभारतकाल से नन्दराजत्वकाल तक कलिंग में ३२ राजा हो चुके थे. उन राजाओं को "ऐर राजा" कहा गया है। उदयगिरी के हाथी गुम्फा में जो खोदित लिपि है, उसमें लिखा है कि केतुभद्र नामक "ऐर" वंश के राजा होगये हैं। कोई कोई उस केतुभद्र को श्रुतायु के पुत्र केतुमान होना कहते हैं। किंतु महाभारत युद्ध में केतुमान मारे गये थे, इसलिये उनके राजा होकर राजत्व करना संभव नहीं है। श्रुतायु के पूर्व या परवर्ती राजाओं में से कोई एक केतुभद्र नामक राजा हुआ होगा। खारवेल के राजा होने के पूर्व उस केतुभद्र की मूर्ति को पूजा करते थे। केतुभद्र आर्य्यवंशीय राजा था। महाभारत के पूर्व में भी उत्कल या कलिंग देश में आर्य्य राजाओं का राजत्व था, यह प्रमाणित है।

नन्दवंशः—उदयगिरी के हाथी गुम्फा में लिखा है कि नन्दवंश के प्रथमराजा महापद्मनन्द या नन्दवर्धन ने कलिंग देशको विजय कर नन्दसाम्राज्य के अन्तर्भुक्त किया था।

कलिंग में नन्दराजत्व नन्दवंश के शेष राजा तक चलता रहा नन्दराजाओं की राजधानी पाटली पुत्र था।

नन्दवंश में नन्दवर्धन खुद और उनके आठ पुत्र इस तरह ९ राजाओं ने राज्य किया था। शेषनन्द राजा महापद्मनन्द के राजत्वकाल में ग्रीस देश का राजा सिकन्दर ने(एलेकजेण्डर) भारत पर आक्रमण किया था। खीष्टपूर्व ३२७अब्द तक सिकन्दर मगध देश तक न आ सके थे। शेष महापद्मनन्द का "प्रासी" (प्राची) और "गंगराइड़" (उड़ू) देश का राजा होना लिखा है। नन्द राजत्व के अनन्तर (३२५ खी० पू०) मौर्य्य वंशीय राजा लोग मगध देश के राजा हुए। मौर्य्यवंश प्रतिष्ठाता चन्द्रगुप्तमौर्य्य ने नीतिशास्त्र विशारद चाणक्य की मन्त्रणा से शेष नन्दराजा महापद्मनन्द को नाश कर मौर्य्य साम्राज्य प्रतिष्ठित किया था। यही चन्द्रगुप्त थे जिन ने अपना साम्राज्य का सम्पूर्ण आर्य्यवर्त में विस्तार किया था। भारत के इतिहास में यही प्रथम सम्राट् के नाम से सम्मानित किए गये हैं। इनकी राजसभा में एक ग्रीक दूत पण्डित मेगेस्थनीज़ रहते थे। प्राचीन भारत की सामाजिक और राजनैतिक अवस्था के विषय में उन ने बहुत कुछ बातें लिखी हैं। उन ने लिखा है कि उस समय कलिंग एक स्वाधीन देश था। कलिंग नन्द राजत्व के अन्तर्भुक्त हो जाने पर भी इतना दुर्बल नहीं हुआ था। शेष नन्द राजा को दुर्बल देख और सिकन्दर के द्वारा परास्त तथा मौर्य्य साम्राज्य प्रतिष्ठित होना देख

कलिंग ने फिर एक बार स्वाधीनता की घोषणा की थी।

नन्दराजत्वः—नन्द राजालोग प्रजापालक, धर्म परायण और ब्राह्मण धर्मावलम्बी थे। ब्राह्मणलोगों के शास्त्रों के अनुसार वे लोग प्रजापालन और देशशासन करते थे। हाथी गुम्फा के शिलालेख में लिखा है कि प्रथम नन्दवर्धन ने कलिंग राजधानी के आसपास एक केनाल खुदवाया। नन्दराजत्व में कलिंगकी राजधानी तोषाली थी। तोषाली यह नाम कालक्रम से बदलते हुए वर्तमान् धउली नाम से अभिहित है, ऐसा पण्डितों का मत है। इससे यह अनुमान होता है कि कलिंग की राजधानी तोषाली वर्तमान खण्डगिरि, उदयगिरि, भुवनेश्वर और धौली पर्वत के मध्य में रही होगी। नन्दवर्धन की राजधानी के समीप में जो केनाल खुदवाया गया था, संभवतः वह वर्तमान दयानदी हो। कृषि के उपकार तथा वाणिज्य सुविधा के लिये यह केनाल (नहर) खुदवाया गया था। इससे यह सहज ही अनुमान किया जा सक्ता है कि लोकोपकारिता की ओर नन्द राजाओं की कैसी दृष्टि थी।

धर्मः—नन्द राजालोग ब्राह्मण धर्मावलम्बी थे। किन्तु नन्दराजाओं के पूर्व कलिंगदेश में जैनधर्म प्रवेश कर चुका था, नन्दराजत्व के पूर्व कलिंग राजधानी खण्डगिरि पर्वतमें बहुत से जैन संन्यासी लोग रहते थे, और अधिक संख्या में जैन मूर्तियां भी स्थापित हुई थीं। उन मूर्तियों में से नन्दवर्धन श्री ऋषभदेव की प्रतिमूर्ति को अपनी राजधानी मगध में ले

गये थे। (जैनधर्म के विषय में हम परवर्ती किसी अध्याय में लिखेंगे) यद्यपि नन्दराजा लोग ब्राह्मणधर्मावलम्बी थे तथापि जैनधर्म के प्रति कोई अवज्ञा प्रदर्शन नहीं करते थे, पर जैन-धर्म के प्रति उनकी अवास्था थी, इतना ही नहीं किन्तु अपनी राजधानी के भूषणस्वरूप उत्कलदेश से जैनमूर्तियें को लेजा-कर स्वदेश में स्थापन किया था।

अध्याय पांचवां

जैन तथा मौर्य्यराजत्व

(खीष्ट पूर्व ३२२—२२० अब्द)

जैन राजागणः—पूर्व अध्याय में कहा गया है कि नन्द वंश के शेष राजा को दुर्बल देखकर और चन्द्रगुप्त के उनको मार कर सिंहासन अधिकार करने की सुभिधा देख कर कलिंग एक स्वाधीन देश होगया था। उसी स्वाधीनता विद्रोह से लेकर कलिंग में जो राजवंश राजत्व करने लगे उन्हें हाथीगुम्फा खोदित लिपि में द्वितीय राजवंश लिखा गया है। नन्दवंश के पूर्ववर्ती राजागण प्रथम राजवंश के नाम से परिचित हैं। इस द्वितीय राजवंश में कौन कौन राजा हुए थे और उन लोगों ने क्या क्या काम किया था इस

का पता अब तक न चल सका है। परन्तु इतना ही मालूम हुआ है कि इस राजवंश को "ऐर" कहते हैं। ऐरवंशीय राजा लोग आर्य्य थे। मौर्य्य राजाओं के आधिपत्य विस्तार के पूर्व वे लोग स्वतन्त्रता के साथ कलिंग में राज्य करते थे। उन लोगों को "वेद धर्म विनाशकाः" अर्थात् वेद धर्म के विरोधी थे ऐसा भी कहते हैं। मौर्य्य आधिपत्य का विस्तार होने के पहिले कलिङ्ग में बौद्धधर्म का प्रवेश नहीं हुआ था, इससे वे वेद धर्म विरोधी राजा लोग जैन थे यह अनुमान होता है, इन राजाओं के राजत्वकाल में उत्कल देश में जैनधर्म का प्रचार विशेषता के साथ हुआ था। तोपाली भी उन लोगों की राजधानी रही थी।

अशोकः—मौर्य्यवंश के तृतीय और सर्व प्रसिद्ध सम्राट् अशोक सन् ई० से २६९ वर्ष पूर्व से २३६ अब्द (खी० पू०) तक मगध देश के सम्राट् हुए थे। अशोक अपनी प्रथमावस्था में बहुत ही निर्दयी थे इसलिए उन्हें "चण्डाशोक" भी कहते थे। सिंहासन प्राप्त करने के चार वर्ष के अनन्तर उनका अभिषेक हुआ था। उन के सिंहासन प्राप्त करने के १३ वर्ष के अनन्तर तथा उन के राजत्वकाल के नवम वर्ष में यानी सन् ई० से २५६ वर्ष पूर्व में अशोक ने कलिङ्ग देश पर चढ़ाई की थी। उन के पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य्य ने केवल कलिंग और उत्कल देश को छोड़ समग्र आर्य्यावर्त में मौर्य्य साम्राज्य का विस्तार किया था। इस समय तक भी कलि

एक स्वाधीन देश था। कलिङ्ग निवासी विशेष प्रबल और पराक्रान्त योद्धा थे। अशोक समस्त भारतवर्ष के एक प्रबल सम्राट् रह कर भी उन ने कलिङ्ग विजय करने के लिए जिस तरह भीषण युद्ध किया था, उस से कलिङ्ग देश का पराक्रम और युद्ध कौशल सहज ही अनुमेय है। अशोक अपने अनुशासन में लिखते हैं कि "इस युद्ध में कलिङ्गवासी एक लाख सैन्य बन्दी, एक लाख पचास हज़ार सैन्य आहत तथा इससे भी अधिक संख्या में सैन्य समराङ्गण में मृत हुए थे।" अपनी स्वाधीनता रक्षा करने के लिए कलिङ्ग सैन्यों ने जिस प्रकार साहसपूर्वक युद्ध किया था। और जैसे अधिक परिमाण में अपने प्राणों की बलि दी थी उससे देख कर अशोक के सदृश एक निर्दयी राजा को भी बहुत कष्ट हुआ था। राजा अशोक के जीवन में जो परिवर्तन हुआ था उस का कारण यह कलिंग युद्ध ही था। केवल अशोक की जीवनी में ही नहीं किन्तु स्वाधीनता रक्षा के निमित्त कलिंग वासियों का अकातर प्राणदान पृथ्वी के इतिहास में प्रसिद्ध है। इस युद्ध के अनन्तर अशोक के मनसे युद्ध लालसा छूटगई और अहिंसा ही उन का परम धर्म और प्रधान बल हो गया। कलिंग रक्तपात से व्यथित होकर उनने उपगुप्त नामक एक बौद्ध संन्यासी से बुद्धदेव का अहिंसाधर्म ग्रहण किया था। इस घटना के अनन्तर वे "चण्डाशोक" के बदले "धर्माशोक" और प्रियदर्शी राजा के नाम से प्रख्यात हुए।

अशोक का राजत्वः—बौद्धधर्म में दीक्षित होने के अनन्तर अशोक बड़े दयालु, उदार और धार्मिक सम्राट् हुए। इनके पूर्व बौद्धधर्म संकुचित सीमाबद्ध था, किन्तु महाराजा अशोक ने असाधारण क्षमता, प्रतिभा और उत्साह के बल से इस धर्म को पृथ्वीव्यापी धर्म बनादिया। इनने धर्म प्रचारक नियुक्त करके भारतके नाना स्थान, समग्र एशिया महाद्वीप, तथा उत्तर आफ्रिका में बौद्धधर्म का प्रचार किया और बौद्ध पण्डितों की सभा बनाकर बौद्धधर्म पद्धति को विधिबद्ध किया। बुद्धदेव ने केवल बौद्धधर्म की प्रतिष्ठा की थी, किन्तु सम्राट् अशोक ने उसधर्म में प्राण देकर समग्र पृथ्वी में उसे प्रतिष्ठित तथा प्रभावान्वित किया था। उन्हें बौद्धधर्म के द्वितीय प्रतिष्ठाता कहें तो अनुचित न होगा। सचमुच में जिन जिन महापुरुष लोगों ने युगयुग में नवधर्म संस्थापन कर मनुष्य जाति का उद्धार किया है, प्रियदर्शी अशोक ने भी पृथ्वी के इतिहास में उन्हीं पुरुषों के समान गौरव प्राप्त किया है, इसमें सन्देह नहीं। अपने विपुल साम्राज्य में प्रजाओं में, धर्मज्ञान बढ़ाने के लिये उनने नाना स्थान पहाड़ और स्थम्भों में धर्म अनुशासन खुदवाये थे। यही नहीं प्रत्युत वे पुरोहित और शासनकर्ता नियुक्त कर धर्म शिक्षा का प्रचार करते थे। कलिंग अधिकार कर महाराजा अशोक ने शासन सुविधा के लिये कलिंग को उत्तर कलिंग (उत्कल) और दक्षिण कलिंग नामक दो नामों में विभक्त किया, तोषाली उत्कल (उत्तर

कलिंग) को ओर समीप पुरी दक्षिण कलिङ्ग की राजधानी थी। तोषाली को जउगढ़ भी कहते थे। उडिया भाषा में लाख को जऊ कहते हैं। इस गढ़ की दीवारें पूर्वकाल में केवल लाख की बनी हुई रहने से इसको जऊगढ़ कहते थे। उपरोक्त उभय राजधानी में दो शासनकर्त्ता रहते थे। इन राजधानियों में भी प्रजाओं के धर्मभाव को बढ़ाने के लिये सम्राट अशोक के अनुशासन खुदवाये गये थे। धौली पर्वतमें जो अशोक की एकादश आज्ञा खोदित हैं, वे अब तक भी विद्य-मान हैं। वे आज्ञा इस तरह की हैं—

१-जीवहिंसा निषेध।

२-मनुष्यों और पशुओं के लिये और चिकित्सा व्यवस्था तथा सड़कों के किनारे झाड़ लगाना।

३-प्रति पाँच वर्ष में बौद्धधर्म की प्रधान नीतिओं का प्रचार करना याने पिता माता में भक्ति, भाई बन्धु पड़ोसियों में स्नेह, जीवमें दया मिताचार मनवाक्य का संयम इत्यादि।

४-पूर्व अवस्था के साथ वर्तमान राजनीति से देश की उन्नति की तुलना करना।

५-देशीय और विदेशीय (विजित और स्वाधीन) राजा और प्रजाओं को धर्म उपदेश देने के लिये उपदेशक तथा प्रचारकों की नियुक्ति।

६-प्रजाओं के आचार व्यवहार तथा धर्म जीवन का पता लेने के लिये गुप्तचर नियुक्त करना।

७–भिन्न भिन्न धर्मों के प्रति ममता और उदारता दिखलाना।

८–पूर्वप्रचलित "विहार यात्रा" (शिकार) के एवज में "धर्मयात्रा" करना यथा साधुसंग, धनदान, गुरुभक्ति इत्यादि।

९–धर्माचरण से वास्तविक सुख मिलता है और इसी से हो स्वर्ग सुख होता है, इन युक्तियों का प्रचार करना।

१०–ऐहिकसुख और यश अनित्य है, उनके प्रति अनास्था प्रदर्शन कर स्वर्गीय सुख के पवित्र और सत्यज्ञान में आग्रह करना।

११–वास्तविक दयालु कार्य्यधर्म उपदेश देना है और यही सब गुणों में श्रेष्ठ है। यद्यपि सम्राट् अशोक ने कलिंग विजय करने के लिये भीषण युद्ध किया और इस युद्ध में अगणित कलिंग सैन्य वीरगति को प्राप्त हुए और जिस दृश्य को देख कर उनके जीवन में एक भारी परिवर्तन हुआ तथापि वे समग्र कलिंग देश अधिकार न कर सके। अशोक के अनु- शासनों को देखने से यह मालूम होता है कि उनने इन सब स्वाधीन देश के राजाओं और प्रजाओं को धर्मज्ञान ग्रहण और प्रचार करने के निमित्त आवाहन किया था। उनने ताम्र- लिप्त में भी एक स्तम्भ निर्माण कर धर्म अनुशासन खुद- वाये थे।

प्रजाओं की सुभिधा के लिये कलिंग में उनके राजत्वकाल

में बहुत से सड़क, घाट, कुए और तालाब इत्यादि निर्माण किये गये थे। मनुष्य और पशुओं के लिये कई जगहों पर ले औषधालय बनाये गये। यात्रियों के लिये अनेक जगहों पर सराय भी बनवाये गये थे। सराय के किनारे बहुत से फलदार वृक्ष भी लगाये गये। सारांश में धर्मपरायण और प्रजाहितैषी सम्राट् अशोक के सदृश इस बीच में कोई दूसरे राजा न हुए।

मौर्य्यशासन का अन्तः—३३ वर्ष राजत्व करने के अनन्तर सम्राट् अशोक के खृीष्ट पूर्व१३६अब्द में निर्वाण हुए। उनके परवर्ती राजा लोग पराक्रमी और विचक्षण न होने से मौर्य्य साम्राज्य खण्ड विखण्ड होगया। और जो राजालोग मौर्य्य साम्राज्य के आधीन थे, वे सब स्वतंत्र राजा बन बैठे। पुष्पमित्र या बृहस्पतिमित्र शेष मौर्य्य सम्राट् के मन्त्री थे। उसने शेष राजा बृहद्रथ को निर्बल देख और मौर्य्य साम्राज्य के अवसान का दिन समीप देख राजा बृहद्रथ का वध किया और स्वयं सिंहासन आरूढ़ हुए। उनने फिर एक मरतबे समग्र आर्य्यावर्त विजयकर मित्र साम्राज्य का विस्तार किया। अपने को चक्रवर्ती राजा बनाने के लिये उसने अश्वमेध यज्ञ किया था और समग्र आर्य्यावर्त में एकेश्वर सम्राट् बन बैठे। पुष्पमित्र ब्राह्मण थे, इससे मित्रवंश के शासनकाल बौद्धधर्म के स्थान में ब्राह्मणधर्म का प्रसार हुआ था।

———※———

अध्याय छटवां

चैत्रवंश

(खृष्ट पूर्व २२० अब्द से खृष्ट प्रथम शताब्दि तक)

चैत्रवंशः—सम्राट् अशोक के कलिंग में अधिकार जमाने पर भी स्वाधीन ऐर वंशीय राजा लोगोंने उनकी आधीनता स्वीकार नहीं की थी। वे लोग कलिंग छोड़ दक्षिण कोशल की ओर चले गये और वहां ही स्वाधीनभाव से राज्य करने लगे। सम्राट् अशोक की मृत्यु के १६ वर्ष के अनन्तर अर्थात् खृष्टपूर्व २२० अब्द में मौर्य्य सम्राट् को बलहीन जान कर चैत्र ऐर नामक एक राजा कोशल से कलिंग में आये और अपना अधिकार जमाकर उसे स्वाधीन राज्यमें परिणत किया। उनके नामानुसार उनके प्रतिष्ठित कलिंग राजवंश चैत्र "चेति" वंश के नाम से परिचित हुए। यही चैत्रवंश कलिंग के तृतीय राजवंश कहलाते हैं। पुराणमतानुसार सूर्य्यवंश के मनुओं में एक सुरोचिस नामक राजा हो गये थे। इन्हीं सुरोचिस नामक राजा के वंशधरों में चैत्र "ऐर" थे। कलिंग के पूर्वोक्त तीनों राजवंशीय राजालोग "ऐर" उपाधि धारण करते थे। किन्तु ये तीनों राजवंश एक ही वंश के थे या पृथक् वंश के होकर अनार्य राजाओं से अपना पार्थक्य जतलाने के लिये आर्य्य या ऐर उपाधि धारण करते थे, यह बात स्पष्ट

नहीं है। चैत्र राजा लोगों के कौशल से अपनी राजधानी उठाकर भुवनेश्वर अन्तर्गत खण्डगिरि निकटवर्ती एक प्रस्तर नामक स्थान में अपनी राजधानी बनाई। पहिले यह कहा गया है कि नन्द राजाओं के शासनकाल से मौर्य्य साम्राज्य के शेष तक तोषाली कलिंग की राजधानी थी। प्राचीन लिपिओं के देखने से यह प्रमाणित होता है कि इस तोषाली को ही "एक प्रस्तर" कहते थे। चन्द्रगुप्त के ग्रीक दूत मेगेस्थनीज़ ने उसी को पार्थली नाम दिया है। इससे यह कहा जासक्ता है कि नन्दराजत्वकाल से चैत्रवंश के शेष राजा के राजत्वकाल तक कलिंग की राजधानी धउली और खण्ड-गिरी मध्यवर्ती तोषाली नगरी ही थी। हाथी गुम्फा की खोदित लिपिमें इसको 'पृथूकदर्भ' नगरी कहकर लिखा गया है। संभवतः पुरातनकाल में यहां पानी और शस्य अधिकता से होने के कारण इसका नाम प्रथूकदर्भ दिया गया हो। यही कारण है कि पंडित लोग कहते हैं कि पुरातनकालमें तोपाली नगरी में आधुनिक पार्क के रूप में तालाब और मैदान विद्य-मान थे। निःसन्देह यह नगरी जनाकीर्ण और सौन्दर्य्यपूर्ण रही होगी। राजाचैत्र पेर के कलिंग सिंहासन आरोहण होने पर कौशल स्वतंत्र देश न होकर कलिंग के अन्तर्भुक्त होगया कौशल तोषाली (कलिंग) और मौषल ये सब एक साथ मिलकर कलिंग नाम से परिचित होने लगे। यही कारण है कि खारवेल के देश विजय में कौशल का नाम नहीं आया है।

किन्तु कोशल के पश्चिम में मूषिक राज्यका खारवेल द्वारा विजित होना वर्णन है। नाट्यशास्त्र में कोशलवासी, तोषाली-वासी तथा मूषिक देशवासी लोगों का कलिंग निवासी होना लिखा है। चैत्रवंशीय राजा लोग "जैनधर्मावलम्बी" थे और बड़े धार्मिक राजा थे। इसी कारण से वे लोग राजर्षि उपाधिसे भूषित किये गये थे। इस वंशमें ६ राजा होगये हैं। ये राजा लोग मेघवाहन या महामेघवाहन की उपाधि भी धारण करते थे।

खारवेल

युवराज:—चैत्रवंशीय राजाओं में खारवेल सब से श्रेष्ठ और पराक्रमी राजा थे। वंश परम्परा अनुसार खारवेल भी "ऐर महामेघ वाहन" की उपाधि से भूषित हुए थे, राजा चैत्र ऐर के कलिंग में अधिकार जमाने के २३ वर्ष के अनन्तर (सन् ईस्वी १९७ वर्षपूर्व में) इनका जन्म हुआ था। पन्द्रह वर्ष तक इनका बाल्यजीवन केवल क्रीड़ा में व्यतीत हुआ। सन् ईस्वी से १८२ वर्ष पूर्व याने अपने १५ वर्ष में खारवेल युवराजपद में अभिषिक्त हुए। अनुमान होता है कि इनके पिता वृद्ध अथवा रोगग्रस्त होने के कारण राज्य चलाने में अक्षम थे इसी कारण खारवेल को उनने युवराज पद देकर संपूर्ण राज्यभार उनके हाथ में सौंपा और तब से ही राज्यभार खारवेल के हाथ में न्यस्त हुआ। युवराज होने

के बाद राजा खारबेल को राजधर्म की शिक्षा दीगई। २४ वर्ष की अवस्था में संपूर्ण राजविद्या में उत्तीर्ण हुए और विशेषतः ज्ञान और धर्म में उनकी प्रवीणता प्रशंसनीय हुई।

राज्याभिषेकः—खारवेल की २४ वर्ष की अवस्था में अर्थात् सन् ईस्वी से १७३ वर्ष पूर्व में उनके पिता स्वर्गवासी हुए। और तब वे कलिंग राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। वंश परम्परा से यद्यपि वे जैनधर्मावलम्बी थे तथापि उनका राज्याभिषेक ब्राह्मण धर्म के अनुसार हुआ था। जिस वर्ष खारवेल राजा हुए उसी वर्ष प्रचण्ड तूफान होने से राजधानी तोषाली नगरी की बाहिरी दीवारें मय दरवाजा के टूट गईं थीं इसे फिर से राजा खारबेल ने मजबूती के साथ तैय्यार करवाया।

देश विजयः—हाथी गुम्फा शिलालेख में पाली भाषा में खोदित एक वृहत लेख है। उसमें खारबेल के राजत्व के प्रथम वर्ष से १३ वर्ष तक की घटनाएं वर्णित हैं। उससे यह मालूम होता है कि राजा खारवेल ने अपने राजत्व के प्रथम वर्ष में राजधानी की मरम्मत का काम शेषकर द्वितीय वर्ष से द्वादश वर्ष (१२) तक देश विजय करने के लिये युद्ध यात्रा में बाहर ही घूमते रहे।

मूषिकदेश विजयः—कौशल (दक्षिण कौशल) के पश्चिम में मूषिक नामक एक देश कलिंग से लगा हुआ उत्तर पश्चिम की ओर अर्थात् वर्तमान कालाहाण्डी सम्बल इत्यादि स्थानों

में व्याप्तमान था। वर्तमान घुमसर इत्यादि स्थान और गंजाम जिला के पश्चिमीय विभाग में भंजवंशीय क्षत्री लोग राज्य करते थे, मूषिक राजा इन काश्यप क्षत्रियों को बारम्बार आक्रमण कर भारी अत्याचार करते थे। काश्यपदेश कलिंग के अन्तर्गत था, इसलिये राजा खारवेल ने काश्यपों की रक्षा करने के लिये मूषिक देश पर चढ़ाई की, वे इस समय आंध्र देश में होते हुए गये थे। इसीसे आंध्र राजा सातकर्णि ने उनका गतिरोध किया था। किन्तु वे ससैन्य परास्त होकर मार्ग छोड़ने के लिये बाध्य हुए। आंध्र राजा सातकर्णि को परास्त कर खारवेल ने मूषिक राजा की राजधानी में हमला कर समस्त मूषिक लोगों को परास्त किया और इसी युद्ध से खीष्टपूर्व १७१ अब्द में समग्र मूषिक देश कलिंग के अन्तर्भुक्त हुआ।

भोजक और राष्ट्रि राज्य आक्रमण:—राजा खारवेल अपने राजत्व के चतुर्थ वर्ष में (खी० पू० १६६ अब्द में) राष्ट्रिक और भोजक राजाओं से युद्ध करने चले। ये दोनों देश आंध्र देश के समीप में पश्चिम और उत्तर पश्चिम में थे वर्तमान महाराष्ट्र देशका राष्ट्रिक और बरार का भोजक राज्य होना अनुमान किया जाता है। इन राजाओं ने खारवेल के विरुद्ध में आंध्रराजा सातकर्णि की सहायता की थी। इसी से राजा खारवेल ने प्रथम आंध्र और मूषिक देश वासियों को दबाकर अनन्तर राष्ट्रिक और भोजक राज्यों में आक्रमण

किया। आखिर में इन दोनों राज्यों को विजय कर खारवेल ने उन्हें कलिंग के अन्तर्गत किया। किन्तु इन राज्यों को दूर होने कारण अपने अधिकार में न ला, केवल उन्हीं राजाओं को वापस कर उन्हें अपना आधीन राजा माना। इन राजाओं ने भी राजा खारवेल को अपना राजाधिराज माना और यथोचित सन्मान किया। तब से वे लोग स्वाधीन राजा न रहगये किन्तु खारवेल के आधीन राजा होगये।

विवाहः—राजा खारवेलका विवाह उनके राजत्वके सप्तम वर्ष में याने २२ वर्ष की अवस्था में हुआ था। खण्डगिरीस्थ मंचपुरी गुफा में जो शिलालेख है, उसमें लिखा है कि यह गुफा चक्रवर्ती राजा खारवेल की मुख्य पटरानी द्वारा कराई गई है, जो राजा लालकसकी पुत्री थी। यह लालकस हाथी-सहस के पौत्र थे किन्तु राजा खारवेल की पटरानी का नाम यहां नहीं लिखा है और न राजा लालकस किस देश के राजा थे यह भी स्पष्ट है। पं० श्री नीलकण्ठदास ने खारवेल के विवाह सम्बन्ध में एक उड़िया भाषा में काव्य पुस्तक लिखी है, इसने खारवेल की पटरानीका नाम धुसी लिखा है। उस का सरांश नीचे दिया जाता है।

"राजा खारवेल पाण्डय देशको विजय कर और उस देश के राजा से मित्रता स्थापन कर वहां से वणिकों के सङ्ग में जावा तथा वाली द्वीप इत्यादि की ओर घूम आये। अनन्तर उनको यह मालूम हुआ कि फ़ारस देश में जाने वाले कलिंग

वणिक लोग सिन्धु देशके किनारे से पश्चिमकी ओर सुख से व्यापार नहीं कर सकते, और उन्हें बहुत कुछ धन दण्ड स्वरूप देना पड़ता है तथा उन्हें बहुत कुछ कष्ट भी उठाना पड़ता है, कलिंग वणिकों की इस कष्ट से मुक्ति देने के लिये राजा खारवेल बहुत कुछ कलिंग, उत्कल, उड्र तथा पाण्डय सैन्यों को साथ में लेकर युद्ध करने के लिये सिंधु देश की ओर रवाना हुये।

"उस वक्त अफगानिस्तानका पूर्व प्रदेश "विजिर" तथा विलोचिस्तानका पूर्व प्रदेश "पुर" नाम से प्रसिद्ध था। विजिर राज्य उस समय सिंधु देश के पश्चिम तक व्याप्तमान था। सिंधु देश में पाताल (पटल) नामक एक वणिक नगरी थी। इसके पश्चिम में जो देश था उसमें बहुत काल से द्राविड़ लोग कृषक रूपमें निवास करते थे। इस वक्तभी इन द्राविड़ों के वंशधर लोग दक्षिण विलोचिस्तान में पाये जाते हैं। यह लोग पूर्वकाल में विजिर राजा के अधिकार में रहकर द्राविड़ रीति नीति छोड़ आर्यों की रीति नीतिके अनुसार चलते थे। उक्त कृषक देश का राजा (ग्रामणी) विजिर राजा का बड़ा मित्र और आत्मीय था।

"सिकन्दरके चले जाने के बाद उनके कुछ सेनापति लोगों ने अफगानिस्तान और फारसके कुछ अंशोंको लेकर देमित्रियानामक राज्य संस्थापन किया था. यहां खारवेलके राजत्व के समय में डेमित्रियस (दोत्तम) नामक एक बलवान राजा

राज्य करता था। उसने विजिर, पुर इत्यादिक स्थानोंको कूट युद्ध से जीतकर अपने अधिकार में कर लिया, और वहां पर था वहां से जाने वाले विदेशी व्यापारियों के ऊपर अन्याय पूर्वक कर लगाकर उन्हें हैरान करता था। उस समय विजिर राज्य की राजधानी सिहपथ था। डेमिट्रूअस के विजिर राज्य पर अधिकार कर लेने पर विजिर राजा और युवराज अपनी राजधानी सिहपथ को छोड़ कर अन्य किसी मित्र राजा के आश्रय में चले गये। और विजिर राजकन्या धूसी को उनके मित्र कृषक देशका राजा (ग्रामीण) अपने यहां पालन करने के लिये ले आयो, तबसे विजिर राजकन्या धूसी उसी के यहां रहती थी।

"राजा खारवेल ने कलिंग वणिकों के दुःख मोचन करने के लिये कुछ सैन्यों के साथ सिन्धु नदी के मुहाने के पास पाताल नामक नगरी में जाकर अपनी छावनी की। और कृषक देश के राजा को इस युद्ध में सम्मिलित होने के लिये आह्वान किया। ऐसे ही समय में एक दिन राजा खारवेल अपने घोड़े पर सवार होकर सिन्धु नदी के पश्चिम की ओर घूमने निकले, किन्तु वापस आते समय रास्ता भूल गये। आते वक्त उनने देखा कि नदी के किनारे कुछ कृषक बालिकाएँ खेल रही हैं और धूसी एक पत्थर के ऊपर बैठी हुई थी। राजा खारवेल धूसी के समीप जाकर उससे रास्ता पूछने लगे और उत्तर पाकर अपनी छावनी में वापस चले आये। धूसी एक राजकन्या थी और इस राजा का रूप

ौवन देखकर मोहित होगई और स्वयं खारवेल भी मोहित हो गये । इस राजा को फिर एक बार देखने के लिये धूसी इसी तरह लगातार कई दिनों तक वहीं उस पत्थर पर बैठी रहती थी; किन्तु फिर ऐसा सौभाग्य उसे प्राप्त न हुआ । एक दिन जब कृषक राजा खारवेल को इस युद्ध में सम्मिलित होने के लिये कृषक सेना देने का वचन देकर यह विचार कर रहा था, कि कौन सेनानायक होकर सेना चलावे । इसी समय धूसी कुछ कृषक बालिकाओं के साथ में वहां पहुंची । कृषक राजा स्वयं वृद्ध होगया था और उसे कोई उपयुक्त सेना नायक नहीं दीखा, इससे चिन्तित था और वचन पूर्ति करने की लालसा बलवती होरही थी ।

धूसी अपनी बाल्यावस्था में बाणविद्या में निपुण होचुकी थी और राजा खारवेल को देख कर भी वह मोहित हो चुकी थी और साथ ही पितृऋण से उऋण होने के लिये यवनराज से बदला लेना चाहती थी, इसी से उसने (धूसी) वृद्ध कृषक पति से कहा कि "मैं ही सेना नायक होकर शुभ रीति से राज्य-कोचित कार्य्य करूँगी ।" वृद्ध कृषक पति भी इसकी इस बात पर सहमत होगये और धूसी ने मर्द का भेष धारण कर विजित युवकों का एक संगठन किया और स्वयं सेनापति का भार ग्रहण किया । अल्प ही समय में इस सेनापति के सुचारु और विश्वासजनक कार्य्य को देखकर खारवेल का प्रेम उस पर अधिक परिणाम में बढ़ने लगा और राजा उसे हितैषी तथा

आत्मीय मानने लगे। एक समय युद्ध का जब भारी आयोजन हो रहा था, इसी अवसर पर एक सुगत ने खारबेल के पास आकर युद्ध बन्द करने का उपदेश किया और स्वयं दत्तिम को समझाने के लिये बेक्ट्रिया की ओर चला। इस सुगत के समझाने पर दत्तिम चालाकी से परस्पर में समाधान होने के लिये राजी हुआ और खारबेल प्रभृतियों को विजिर राजा के साथ विजिर देश में मिलने के लिये कहा। धूसी जिसने कि सेनापति का भार ग्रहण किया था, इस सब कूटनीति को पहिले से जानती थी और उसे इस समय में मूल से शंका बनी थी, तथापि जन्मभूमि को एक बार देखने की इच्छा से इस विषय में सहमत होकर राजा खारबेल के साथ ससैन्य विजिर राजधानी सिंहपथ में आई। इस समाचार को सुन दत्तिम ने रात्रि के समय ही सिंहपथ पर ससैन्य आक्रमण किया। धूसी यह सब आगे से ही जानती थी और यह जान कर उसने कुछ कृषक और उत्कल सेनाओं को साथ में लेकर बाहर की तरफ से दत्तिम को घेर लिया, इसप्रकार दत्तिम दोनों ओर घिर जाने से परास्त हुआ और उसकी कूटनीति इस वक्त निष्फल हुई। किन्तु इस युद्धमें राजा खारबेल आहत होकर मृतवत् हो गये थे, उनकी इस अवस्था को देखकर वीरतापूर्वक युद्ध करती हुई धूसी ने राजा खारबेल को बचा लिया और उन को भारी सुश्रूषा कर एक प्रकार प्राण दान दिया। राजा खारबेल उस का इस प्रकार साहस का काम देख उस के

भारी हताश हुए और इस का परिशोध करने का विचार उन के हृदय में स्थान पा चुका था।

वणिकों के समस्त दुःख निवारण कर स्वस्थ हो जाने के अनन्तर राजा खारवेल पातालपुरी को वापस आये और वहाँ धूली के असली रूप को पहिचान लिया। राजकन्या धूली को पहिचान लेने पर और उस के साहस पूर्ण कार्य्य को देखकर उस पर प्रेमासक्त हुए और उस से अपना विवाह कर लिया (वहां से विजिर देश को धूली के पिता पूर्व राजा को अर्पण कर खारवेल राजधानी की ओर लौटे।

मगध आक्रमणः—दक्षिण और पश्चिममें अपना प्रभुत्व विस्तार कर राजा खारवेल ने उत्तर भारत में अपना अधिकार जमाना निश्चय किया। पहिले कहा गया है कि नन्द राजा कलिंग में अधिकार जमा लेने पर ऋषभ देव की मूर्ति तथा अन्यान्य कितनी जैन मूर्तियों को खण्डगिरि से अपनी राज-धानी में ले गये थे। राजा खारवेल जैन थे। इस लिये उन के उन मूर्तियों को फिर से वापस लाकर खण्डगिरि में यथा स्थान स्थापन करने का विचार किया। अपने राजत्व के अष्टम वर्ष में यानी सन् ईस्वी पूर्व १६५ अब्द में खारवेल मगध की ओर रवाना हुए। इस वक्त राजमहल को घेर लेना इन का उद्देश था। उस वक्त गया से पाटलीपुत्र तक एक राज पथ रहा। इसी के नजदीक गोरथगिरि नामक स्थान था।

छोटेनागपुर होते हुए खारवेल ने गोरखगिरि (बड़बर पर धावा किया। गोरखगिरि वर्तमान राम गया के समीप एक प्रसिद्ध दुर्ग था। राजधानी पाटलीपुत्र को दक्षिणी दिशा में में संरक्षण करने के लिये यह दुर्ग बनाया गया था। उस समय पाटलीपुत्र में पुष्पमित्र या बृहस्पति मित्र मगध साम्राज्य के सम्राट् थे, उस समय मगध साम्राज्य विपुल बलशाली था। फिर उस में पुष्पमित्र सरीखे पराक्रमी योद्धा सम्राट् थे. जिन ने कि अश्वमेधयज्ञ कर समग्र आर्य्यावर्त में अपने को चक्रवर्ती राजा बनाया था। उन ने ग्रीक सम्राट् डिमेट्रिअस तथा मेनेण्डर को ससैन्य पराजित कर ग्रीक लोगों को आर्य्यावर्त से निकाल बाहर किया था। इस प्रकार एक प्रतापी सम्राट् से युद्ध करना कोई सहज काम न था। किन्तु खारवेल एक साहसी राजा थे। जैसा ही पुष्पमित्र ने सुना कि खारवेल ने गोरखगिरि दुर्ग को घेर लिया है वे पाटलीपुत्र छोड़ मथुरा में युद्ध सज्जाकर उनकी राह देखने लगे। किन्तु खारवेल इस बक्त गोरखगिरि से ही कलिंग वापस चले आये।

राजा खारवेल भारत में एक प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजा होना चाहते थे। किन्तु मगध सम्राट् पुष्पमित्र को बिना जीते वे अपनी इस इच्छा की पूर्ति नहीं कर सकते थे। इसी उद्देश से खारवेल ने एक मरतबे फिर भी भारी सैन्य संगठन और लड़ाई की तैय्यारी कर अपने राजत्व के द्वादश वर्ष में

(१६१ स० ई० पू०) युद्ध करने चले। अपने राजत्वके द्वादश वर्ष में भी ये एक मरतबे इसी उद्देश से युद्ध करने निकले थे, किन्तु इस समय की यात्रा ही ऐतिहासिक घटना में सर्व प्रधान है। पहिले के समान ये इस वक्त छोटे नागपुर के तरफ से न जाकर महानदी के रास्ते से उत्तर पश्चिम की ओर रवाना हुए। खारवेल सीधा मगध को न जाकर उत्तरापथ राज्यों पर (उत्तर पश्चिम सीमान्त राज्य) धावा किया। और उन राज्यों को जीतते गये (अनुमान होता है कि ये पाटलीपुत्र आते तक भी गङ्गा नदी पार नहीं हुए थे) वे मध्य भारत होते हुए पंजाब तक अग्रसर हुए। उत्तरापथ के किसी भी राजा ने इनका सामहना नहीं किया। और ये इन समस्त देशों को अपने आधीन में कर मगध की ओर रवाना हुए। रास्ते में गंगा नदी पार होकर हिमालय पर्वत के नीचे नीचे आते हुए गंगा के उत्तर किनारे मगध राजधानी पाटलीपुत्र के निकट पहुँचे। पाटलीपुत्र के समीप हाथियों से गंगा नदी पार होकर प्रबल प्रतापी सम्राट् पुष्पमित्र का राजधानी में घेर लिया। इस वक्त कलिंग सेनाओं के विपुल पराक्रम और भीषण युद्ध को देखकर पाटलीपुत्र ही नहीं समग्र मगध देश भयभीत होगया। उस समय मगध भारत में सर्व प्रधान और बलवान राज्य था। राजधानी घेरने की बात तो दूर ही रहा, इस समय मगध देश पर किसी ने आक्रमण ही नहीं किया था। खारवेल का यह आक्रमण ही सब से प्रथम था, इस से

मगध निवासियों का भयभीत होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। राजा खारवेल ने इस युद्ध में पुष्पमित्र को परास्त कर पाटलीपुत्र को अपने अधिकार में कर लिया और अङ्ग और मगधदेश से विपुल धन अपने हस्तगत किया। उत्कल देश से जिन जैन मूर्तियों को नन्दराजा लोग वहीं ले गये थे, राजा खारवेल उन मूर्तियों को अपनी राजधानी में वापस ले आये। पुष्पमित्र के पराजय होने पर भारतवर्ष में मगध के बदले कलिंग साम्राज्य विस्तार हुआ, एक ही वर्ष में खारवेल समग्र भारतवर्ष को विजयकर पंजाब से हिमालय के नीचे २ आकर मगध देश को जीत कर और उसे लूटते हुए अपनी राजधानी में वापस आये। राजा खारवेल के अदम्य उत्साह, बल तथा साहस को देख कर ही उनकी तुलना नेपोलियन बोनापार्ट से की जाती है। मगध सम्राट् को परास्त कर राजा खारवेल भारतवर्ष में एक मात्र चक्रवर्ती राजा हुए। इसलिए फिर वे देश विजय करने के लिये बाहर नहीं निकले। इसी वर्ष दक्षिणीय पाण्डय देशीय राजा के बहुत से हाथी, जहाजों पर उत्कलीय लोगों ने अधिकार किया था। चक्रवर्ती राजा खारवेल ने इसी वर्ष पाण्डय राजा से बहुत से मूल्यवान रत्न, अश्व, हाथी और मनुष्य उपहार में लिये थे। इस तरह से उत्तर और दक्षिण के समस्त राजा लोग राजा खारवेल को अपना चक्रवर्ती राजा मानने लगे।

दानधर्म और देशहितकारक कार्य:—खारवेल केवल युद्ध लिप्सु और दमताभिलाषी राजा न थे। किन्तु नाना प्रकार के देश हितकर कार्य्य और दान धर्म करने में भी वे सदैव तत्पर रहते थे। जिससे उनका गौरवमय जीवन और भी आदरणीय हुआ था। यद्यपि वे स्वयं जैन धर्मावलम्बी थे तथापि वैदिक धर्म के अनुसार उनके युवराजाभिषेक के कार्य्य हुए थे। इससे यह परिचय मिलता है कि वे समस्त धर्मों को समान दृष्टि से देखते थे। यही नहीं यह भी प्रमाणित होता है कि वे अपने शासनकाल में अपना स्वाधीन मत प्रतिष्ठा न कर प्रजारंजन के हेतु शास्त्र नियम के अनुसार राज्यकार्य्य चलाते थे! और किसी अन्य धर्म के प्रति अनास्था प्रदर्शन न करने से उनका जीवन और भी अधिक गौरवमय हुआ था। तथा उनके राजोचित गुण सर्वथा वन्दनीय थे। राजा खारवेल ने अपने राजत्व के प्रथम वर्ष में अपनी पुरानी राजधानी की मरम्मत की थी। और कृषि तथा जलपान की सुविधा के लिये बहुत से तालाब खुदवाये थे तथा जगह २ मनोरञ्जन करने के लिये प्रमोद उद्यान बनवाये थे। मूषिकराज्य को जीतकर स्व-देश में वापिस आने पर उनने अपने देश में विजय उत्सव किया था। वे स्वयं गांधर्व विद्या के धुरंधर ज्ञाता थे। उनके विनिर्मित प्रमोद उद्यानों में वे नित्य नाटक अभिनय, संगीत तथा प्रीतिभोज्य की व्यवस्था रख कर प्रजागणों के साथ निरन्तर प्रफुल्ल चित्त से रहते थे। उनने अपने

राजत्व के चतुर्थ वर्ष में राष्ट्रक राज्य विजय करने के पूर्व विद्याधर दास नामक कितने ही धर्म मंदिर और मठ निर्माण करवाये थे। ३०० वर्ष के पूर्व नन्दराजाओं ने राजधानी के समीप जो अधूरा नहर खुदवाया था, उसकी इनने पूर्ति के पहिले नन्दराजाओं के राजत्वकाल में वह नहर "तनसुलिया" नामक स्थान तक खुदवाया गया था। वहां से महाराजा खारवेल ने नहर खुदवाकर अपनी राजधानी तक लाने का प्रयत्न किया और इसमें सफल हुए भी हुए। इस नहर के खुदजाने पर वाणिज्य और कृषि में विशेष सुविधा हुई। राजत्व के षष्टम वर्ष में वे शहर और सुफस्सिल वासी वणिक और शिल्प व्यवसायियों के लिये वाणिज्य सुविधा के उचित प्रबन्धकर धन्यवाद के पात्र हुए थे। राजत्व के सप्तम वर्ष में इनका विवाह हुआ था (किन्तु नीलकण्ठ दास जी नवम वर्ष में यानी २४ वर्ष को अवस्था में विवाह होना अपने धूसी चरित्र द्योतक काव्य में लिखते हैं) नवम वर्ष में विपुल धन ब्राह्मणों को दान दिया था उसी वर्ष सोने का एक शाखापत्र संयुक्त कल्पवृक्ष तैय्यार करवाकर हाथी, घोड़ा, रथ, महन्त और सारथी सहित ब्राह्मणों को दान में अर्पण किया और उन्हें भोजन भी करवाया था। जिन ब्राह्मण लोगों ने दान ग्रहण किया उन्हें घर ज़मीन, सम्पत्ति इत्यादिक देकर अपने राज्य में रखवाये। वे सब दान और उत्सव राजगृह विजय के उपलक्ष में किये गये थे। इसी विजयके स्मारकस्वरूप 'महाविजय प्रासाद' नामक

एक राजभवन प्राची नदी के किनारे ३८००००० मुद्रा व्ययकर बनवाया था। दसवें वर्ष में भारतवर्ष विजय कर वापस आने पर कलिंग के प्रथम राजवंशीय राजा केतुभद्र की उपासना करने के लिये एक विग्रह संस्थापन किया तथा उस विग्रह की पूजा उपलक्ष में एक यात्रा का आरम्भ किया था। केतुभद्र की मूर्ति की पूजा कलिंग के प्राचीन राजा लोग करते आते थे इसी से महाराजा खारवेल ने जैन रहने पर भी प्राचीन प्रथा के उद्धार के हेतु इस शुभ यात्रा का अनुष्ठान किया था। पुरातन प्रथाओं के प्रति महाराजा खारवेलकी इस तरह भक्ति देखकर देशवासी लोग अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। बारहवें वर्ष में उत्तरापथ और मगध विजय के उपलक्ष में तथा पाराड्य राजा से जो विपुल धन, रत्न प्राप्त हुए थे उसकी रक्षा करने के लिये अपनी राजधानी में अनेक अट्टालिकाओं का निर्माण किया था। ये सब अट्टालिकाएं नाना विचित्र कारुकार्यों से सुशोभित थीं।

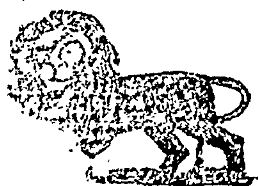
महाराजा खारवेल उत्तरापथ से पाराड्य राज्य पर्यन्त अर्थात् हिमालय पर्वत से कन्याकुमारी अन्तरीप तक भारतवर्ष में अपने राज्य और प्रभुत्व विस्तार कर राजाधिराज हुए थे। इससे उनकी उच्च अभिलाषाओं की पूर्ति यथेष्ट परिणाम में हुई। इसी में १२ वें वर्ष के अनन्तर उनने और लड़ाई कर राज्य विजय करने की इच्छा त्याग कर एक तरह से संन्यास धर्म का अवलम्बन किया और पवित्रतानन्द जीवन

व्यतीत करने लगे। उदयगिरि में अर्हन्त और जैन लोगों के लिये बहुत से मन्दिर निर्माण कर और स्वयं ब्रह्मध्यान धरने के लिये वहीं पर एक सुन्दर अट्टालिका बनवाई। संभव है कि उदयगिरिस्थ रानी हंसपुर की वही अट्टालिका हो। हाथी गुम्फा भी उन्हीं का बनाया हुआ है। चक्रवर्ती राजा होने पर वे संन्यास जीवन धारण कर इस प्रकार के नाना धर्म कार्य्य करते हुए भिक्षु राजा और धर्म राजा के नाम से ख्यात हुए।

चैत्रवंश का अवसान--हाथी गुम्फा के शिला लेख में महाराजा खारवेलके राजत्व के १२ वर्ष की घटनाओं का वर्णन है। उस समय उनकी आयु ३७ वर्ष की थी, उसके अनन्तर अपने जीवन के शेष काल में उनने क्या क्या कार्य्य किये थे, इसका कोई हाल विदित नहीं होता। चक्रवर्ती राजा होने के पश्चात् इन्होंने धर्म राजा कहला कर संन्यास धर्म धारण कर लिया था। अवश्य उन्होंने कुछ वर्ष तक शांति से नाना प्रकार के देशहित कार्य्य करके राज्य चलाया होगा और अपना शेष जीवन भिक्षुभेष से उदयगिरिस्थ रानी हंसपुर गुम्फा में बिताया होगा। उनके प्रबल प्रताप से कलिंग राज्य का विस्तार समग्र भारत में होगया और वह राज्य एक बलवान राज्य होगया। उस समय कलिंग देश की सीमा उत्तर में गंगा नदी और विहार प्रदेश, पश्चिम में बरार गोंडवाना राज्य महाराष्ट्र प्रदेश और दक्षिण में पाण्ड्य राज्य

तक थी, यही नहीं किन्तु सीमान्तवर्ती राजा लोग भी यद्यपि कलिंग के अन्तर्भुक्त नहीं थे तथापि महाराजा खारवेल को चक्रवर्ती राजा स्वीकार कर उनके प्रति राजोचित सन्मान प्रदर्शित करते थे। कलिंग देश के इतिहास में महाराजा खारवेल का समय प्रधान गौरवमय है, महाराजा खारवेल के अनन्तर इस विशाल कलिंग राज्य में चैत्र वंश के और कौन २ राजा हुए, यह अब तक नहीं जाना जा सका। खण्डगिरि के एक शिलालेख में यह बात मालूम होती है कि महाराजा खारवेल के पश्चात् इनके उत्तराधिकारी स्वरूप महामेघवाहन उपाधधारी कुदेपश्री नाम के एक राजा हुए, पर इनका भी इतिहास नहीं मिलता। मार्कण्डेय पुराण में चंडी माहात्म्य का वर्णन है। उससे ज्ञात होता है कि चैत्रवंश के शेष राजा सुरथ हुए थे, एक समय उनका युद्ध कोल विध्वंसी राजा से हुआ इस युद्ध में वे हार गये और स्वर्थी व दुष्ट मंत्रियों ने इनका राज्य छीन लिया तथा वे उदास होकर जङ्गल में गये। उस समय आन्ध्र राजा लोग बड़े प्रबल हो गये थे और वाणिज्य विद्या में प्रवीण थे। वे लोग भी जल वा थल में वाणिज्य करते थे कुछ काल के अनन्तर शातवाहन या आन्ध्र लोगों ने चोल राज्य का विध्वंश कर कलिंग पर आक्रमण किया। महाराजा खारवेल के राजत्व के समय से ये आन्ध्र लोग उनके शत्रु हो गये थे। राजा सुरथ के शासनकाल में ये लोग उन्हें दुर्बल देखकर दक्षिणीय विदेशी कलिंग राज्यों पर अपना अधिकार

जमा लिया। इस समय राजा सुरथ को बाध्य होकर केवल कलिंग का ही राजा होना पड़ा, अनन्तर फिर भी आन्ध्र लोगों ने कलिंग पर चढ़ाई कर उसे अपने अधिकार में लिया और सुरथ को देश से बाहर भागना पड़ा। सुरथ ने मेधा महर्षि का आश्रय लिया सुरथ के राज्यच्युत होने पर कलिंग से चैत्र वंशीय राजाओं का राज्य लोप हुआ। सुरथ इस वंश में ९ वें वशेष राजा थे, सन् ईस्वी के प्रथम शताब्दी के अन्त में चैत्र वंश का लोप हुआ और कलिंग आन्ध्र लोगों के हाथमें आ गया। रक्तबाहु की उत्कल आक्रमण की जो कथा है वह संभवतः आन्ध्र आक्रमण को लक्षकर कही जाती है। चण्डी पुराण की कथा के अनुसार राजा सुरथने जंगल में भाग कर मेधा महर्षि से शाक्त धर्म ग्रहण किया और देवी की उपासना कर पुनः राज्य प्राप्त कर लिया था।



अध्याय सातवाँ

कलिंग की राजनैतिक अवस्था

(खृष्ट प्रथम से पंचम शताब्दी तक)

चेत्र वंश के लोप होने के अनन्तर केसरी वंश के राजत्व तक उत्कल इतिहास की विशेष राजनैतिक घटनाएँ जानी नहीं जातीं। यही नहीं किन्तु भारतके इतिहासमें भी यह समय अज्ञात समय कहा जाता है। उत्कल या कलिंग के इतिहास में भी यही समय अज्ञात समय है, किन्तु चैत्रवंश के लोप के अनंतर कलिंग राज्य शताधिक वर्षों तक आँध्र लोगों के अधिकार में रहा, इसमें सन्देह नहीं है। उस समय भारत में आँध्र जातीय लोग बड़े ही प्रबल प्रतापी हो गये थे। सन् २२५ ई० में आँध्र वंश का लोप हुआ। आँध्र देश के प्रसिद्ध बौद्ध संन्यासी नागार्जुन आँध्र राजधानी में रहते थे। आँध्र राजत्वकाल में नागार्जुन उत्कल में बौद्धमत प्रचार करने के लिये आये थे। और उन्होंने उत्कल राजा और एक हज़ार प्रजाओं को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था।

जगन्नाथ मन्दिर में जो मादला पंजिका है उसमें लिखा है कि "इसी समय में रक्तबाहु नामक यवन ने समुद्र के रास्ते से आकर उत्कल में आक्रमण किया था और जगन्नाथ जी को

बहुत कुछ पीड़ा दी थी। रक्तवाहु तक यवन राजा था और उसके वंश के राजा लोगों ने १४४ वर्ष तक राज्य किया था।" अनुमान होता है कि यह रक्तवाहु आँध्र देश का कोई राजा या सेनापति होगा। एक तो आँध्र में द्राविड़ जातीय लोग रहते थे और फिर बौद्ध धर्म में दाक्षित थे, इसीसे उत्कलीय आर्य लोगों ने रक्तवाहु को यवन राजा लिखा है।

दन्तपुर नाम से भी कलिंग की एक राजधानी थी और ब्रह्मदत्त वहां पर राजा था। कहा जाता है कि बुद्धदेव की दांत की पूजा वहां पर होती थी। ब्रह्मदत्त के वंश में शेष काल में गुहशिव नामक राजा हुए थे। इनके समय में पाण्डु नामक एक राजा पाटलीपुत्र में राज्य करते थे। किन्तु गुहशिव और ब्रह्मदत्त कौन थे और बुद्धदेव की दन्तपूजा की कथा कहां तक सत्य है—ये बातें अबतक स्थिर नहीं की गई हैं।

इसी समय में किन्हीं २ उत्कलीय राजा लोगों ने दूर देशों में विजय प्राप्त किया था। खीष्ट तृतीय शताब्दी में जलीरुह नामक एक उत्कल राजा ने चन्द्रवंशीय राजा भूशचन्द्र को परास्त कर उसके राज्य के कुछ हिस्से को अपने राज्य में मिला लिया था। इनके अनन्तर नागेश नामक एक उत्कल राजा ने वंग राजा कर्मचन्द्र को परास्त कर उन्हें अपने आधीन राजा बना लिया था। राजा नागकेश यमरुत नामक राजा के पुत्र थे और इनका एक नागकेश नामक मंत्री था। किन्तु ये राजा लोग किस वंश के थे, और ये उत्कल

के राजा थे या सामान्य राजा थे, यह ठीक तरह से नहीं कहा जा सका।

गुप्त साम्राज्यः—आंध्र साम्राज्य के पतन के अनन्तर उत्कल देश कुछ काल तक स्वाधीन रहकर फिर श्री गुप्त साम्राज्य के अन्तर्भुक्त हुआ। गुप्त साम्राज्य के प्रधान गुप्त सम्राट् दिग्विजयी समुद्रगुप्त सन् ३२० से ईस्वी तक सम्राट् हुए थे। इनके साम्राज्य काल में गुप्त साम्राज्य बहुत दूर तक विस्तृत हुआ था। सन् ३४७ से ३५० ई० के बीच में ये दक्षिण विजय करने निकले। उनने प्रथम मगध से छोटे नागपुर की तरफ होते हुए कौशल देश में आक्रमण किया और कौशल नरेश महेन्द्र को परास्त किया। कौशल से और दक्षिण की ओर बढ़कर कलिंग राजा को परास्त किया और वहां से गंजाम जिला में होते हुए आंध्र देश विजय करने चले। किन्तु समुद्र गुप्त ने जितने देश विजय किये थे वे सब गुप्त साम्राज्य के अन्तर्भुक्त न हुए। कौशल, कलिंग और दक्षिणी राजा लोग साक्षात् में गुप्त साम्राज्य के आधीन में नहीं थे, इससे यह अनुमान होता है कि कलिङ्ग तथा अन्यान्य विजित राज्य गुप्त साम्राज्य की आधीनता स्वीकार कर करद राज्य स्वरूप में रहे होंगे। केशरी वंश के राजत्वकाल तक कलिंग गुप्त साम्राज्य की आधीनता स्वीकार कर करद राज्य रूपकर में रहा था।

कौशलः—इस के पूर्व यह कहा गया है कि उत्कल देश के पश्चिम में कौशल नामक एक राज्य था। कलिंग में मौर्य आधिपत्य विस्तार होने से इस देश के राजा लोगों ने कौशल देश में आश्रय लिया था। कौशल राजवंशी महामेघ-वाहन उपाधिधारी थे। चैत्रवंशीय राजा लोग भी उसी कौशल देश में आकर निवास करने से खारवेल प्रभृति चैत्र वंशीय राजा लोगों ने महा मेघवाहन की उपाधि धारण की थी।

कौशल राज्य वर्तमान सम्बलपुर, कालाहण्डी, वस्तर तथा रायपुर प्रभृति देशों को लेकर गठित हुआ था, इसका नाम दक्षिण कौशल था तथा काशी और अयोध्या प्रभृति कुछ देशों को लेकर उत्तर कोशल गठित हुआ था। कौशल की राज धानी वाछा (वर्धा) नदी के किनारे वर्तमान मध्यप्रदेश में था। कालान्तर में कौशल राजा लोग मध्य भारत के वाका तक जातीय लोगों से पीड़ित होकर वर्धानदी के किनारे से अपनी राजधानी हटाकर महानदी के किनारे श्रीपुर (राजिम) में अपनी राजधानी बसाई। उसी समय से कौशल छत्तीसगढ़ विभाग में परिणत हुआ। इसी कोशल में सोमवंशी गुप्तवंश नामक एक राज वंश राज्य करते थे। यह लोग उत्कल केशरी वंश के पूर्वपुरुष थे। केशरी वंश संस्थापन होने के पूर्व १२ गुप्त राजा लोगों ने कौशल देश में राज्य किया था और उदायन इस गुप्तवंश के संस्थापक

थे। इसी वंश के बारहवें राजा शिवगुप्त के पुत्र जन्मेजय महाभव गुप्त ने उत्कल विजय कर लिया और त्रिकलिंगाधिपति नाम से अपना परिचय दिया। कौशल के सोमवंशी गुप्त राजा लोग उत्कल में राजा होने के अनन्तर यह देश (कौशल देश) चेदिराज्य कलचुरी राजाओं का राज्य हुआ। कलचुरी राजाओं ने जबलपुर निकटस्थ त्रिपुरी नामक स्थान में अपनी राजधानी बनाई। हैहय नामक उनकी एक शाखा ने बिलासपुर मध्यस्त रत्नपुर में राज्य किया। इस तरह कुछ काल तक कौशलकलिंग से पृथक् रहा। किन्तु कौशल देश प्रथम ही कलिंग के अन्तर्गत था, और समय २ पर पृथक् रही पर भी कौशलवासी उत्कलीय थे और उत्कल के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रहता था, यह कहना अनुचित न होगा।

कोंगद—चेदवंश के अवसान के अनन्तर कलिंग कितने ही विभिन्न राज्यों में विभक्त हो गया था। ऊपर में कौशल राज्यका जो वर्णन है वह इन्हीं विभक्त राज्यों में एक था और कोंगद भी उसी तरह का एक राज्य है। पहिले ही कहा गया है कि कलिंग तीन भाग में विभक्त रह कर त्रिकलिंग कहलाता था। उत्तर भाग को उत्कल, दक्षिण भाग को दक्षिण कलिंग या गंगगउड़ी कलिंग, और मध्यभाग को मध्य कलिंग कहते थे। मौर्य्य और चेदराज्य के शासनकाल में यही त्रिकलिंग कौशल राज्य सहित एक राज्य था। किन्तु परवर्ती

राजाओं के काल में यही वृहत् राज्य पृथक् पृथक् हो गया। इसी राज्य का एक अंश मध्यकलिंग कोंगद राज्य में परिणित हुआ।

आधुनिक वाणपुर, खल्लिकोट, आठगढ़, रणपुर, नवगढ़, घुमसर प्रभृति स्थानों को लेकर कोंगद राज्य विस्तृत था। इसकी राजधानी सालिया नदी के किनारे पर थी। अनुमान होता है कि आधुनिक वाणपुर इसी राज्य की राजधानी रही हो, क्योंकि सालिया नदी बाणपुर के बीच से बहकर चिल्का की खाड़ी में गिरती है। कोंगद निवासी भारी साहसी और पराक्रमी थे। खीष्ट सप्तम शताब्दी तक शैलोद्भव वंश के राजा लोग कोंगद में राज्य करते थे। इसी वंश में माधव वर्म्मा नामक एक राजा बड़े बलवान राजा हुए थे। सन् ६१० ई० में इनने एक राजसूययज्ञ किया था। इस कोंगद राज्य में शैलोद्भव वंशीय राजाओं के अनन्तर करवंशीय राजा लोग राज्य करने लगे। कोंगद राज्य कितने दिनों तक स्वाधीन राज्य रहा यह ठीक तरह नहीं कहा जासकता। अनुमान होता है कि खीष्ट सप्तम या अष्टम शताब्दी के अनन्तर कोंगद राज्य पुनर्वार उत्कल के अन्तर्गत राज्य बना होगा।

ताम्रलिप्त—वर्तमान मेदिनीपुर जिला को लेकर ताम्रलिप्त राज्य गठित हुआ था। अति प्राचीन काल से याने अशोक के समय में मयूरभंज के मयूरध्वज वंशीय राजा लोग

यहाँ राज्य करते थे इसी वंश के ३२ राजाओं ने यहाँ राज्य किया था। ताम्रलिप्त उत्कल या कलिंग के अधीन में था। सम्राट् अशोक ने ताम्रलिप्त को अपने राज्य में मिला लेने पर वहाँ २०० फुट ऊँचा एक स्तम्भ निर्माण कर धर्म शिक्षा खुदवाई थी। अति प्राचीनकाल में ताम्रलिप्त या तुम-लुक एक प्रधान शहर था और यहाँ पर देश विदेश से वणिक लोग आकर धन, रत्न, वस्त्र तथा अन्नादि पदार्थों का व्यापार करते थे। बौद्धकाल के बाद खृष्टसप्तम शताब्दी में कैवर्तवंश ने उत्कल उपकूल से आकर यहाँ अपना आधिपत्य विस्तार किया। यहाँ से मयूरध्वज वंश अवसान होकर कैवर्त वंश का राज्य आरम्भ हुआ। प्रथम कैवर्त राजा कालूभुयाँ ने सिंहा-सन अधिकार कर ताम्रलिप्त में ४०० कैवर्त वंश का स्था-पन किया। क्रमशः कैवर्त वंश बढ़ कर आठ हजार वंशमें परि-णित हुआ। ताम्रलिप्त तब उत्कल में स्वाधीन होकर रहा था या कि करद राज्य के रूप में था, यह ठीक तरह से नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह अनुमान होता है कि सम्राट् अशोक के के शासनकाल आरम्भ से मेदिनीपुर जिला उत्कल से विच्छिन्न होते समय तक वह राज्य उत्कल देश के अन्तर्गत रहा होगा।

अध्याय आठवाँ

देश की दशा ।

उन्नत अवस्था:—नन्द राजाओं के शासन काल से केशरी राजाओं के शासनकाल तक जो हजार वर्ष व्यतीत हुए उस समय देश की अवस्था के सम्बन्ध में बहुत कुछ प्रमाण मिलते हैं। अवश्य केशरी राजाओं के शासन काल आरम्भ होने के ४०० वर्ष पूर्व की बातें स्पष्ट मालूम नहीं पड़तीं। किन्तु राजाओं की जीवनी ही देश का सच्चा इतिहास नहीं है। देशवासियों की जीवनी पर आलोचना करने से देश के समस्त विषय जाने जा सकते हैं और उसे ही देश का सच्चा इतिहास मान सकते हैं। शिलालेख शिलाशिल्प, प्राचीन ग्रंथावली, वैदेशिक लेखकों के लेख तथा किम्बदन्ती की सहायता से उत्कल-कलिंग निवासियों के उस एक हजार वर्ष की अवस्था किस प्रकार उन्नत थी, यह जान सकते हैं। इन सब विषयों के ऊपर विचार करने से यह जान पड़ता है कि उत्कलवासी सभ्य तथा शिल्प और वाणिज्यमें उन्नत थे, उस समय के लोग धार्मिक साहसी तथा शिलाशिल्प और अन्यान्य कलाविद्या में अत्यन्त पारदर्शी थे।

शिलाशिल्प:—उत्कल निवासी खृष्ट पंचम शताब्दी के पूर्व ही शिला शिल्प में उन्नति कर चुके थे। इसका यथेष्ट प्रमाण मिलता है। भुवनेश्वरके समीप खण्डगिरी, उदयगिरी तथा नीलगिरी नामक तीन अत्याधिक ऊंचे पहाड़ हैं। इन सब में खण्डगिरी पर्वत कुछ अधिक ऊंचा है और ऊंचाई में १२३ फुट है और उदयगिरी की ऊंचाई ११० है। इन्हीं तीनों पहाड़ों में बहुत सी गुफायें खुदवायी गई हैं। उदयगिरीमें ४४ खण्ड-गिरी में १९ तथा नीलगिरी में ३ गुफाएं हैं। यह स्थान शान्ति-मय तथा अरण्यों के बीच में रहने से निर्जन हैं। इन पहाड़ों की चारों ओर की शोभा अत्यन्त मनोहर है। यह स्थान राज-धानी तोसाली के निकटवर्ती होने से यहां पूर्व काल में साधु लोग राजाश्रय में रहकर निश्चिन्त भाव से आत्म ध्यान करते थे। और उनकी इसी सुविधा के लिये बहुत सी गुफाएं बनवायी गई थीं। स्वयं राजा खारवेल ने भी राजत्व के शेषकाल में स्त्री सहित साधु जीवन बिताने के लिये रानीहंसपुर गुफा खुदवाई थी इसीको प्राचीन अथवा रानी गुफा कहते हैं, संन्यासी नहीं होने के पूर्व राजा खारवेल कुछ काल तक संन्यासियों के विषयों पर विचार करने के लिये स्वराजधानी (तोसाली) सान्निध्यवर्ती; उदयगिरी में निवास करते थे।

सब गुफाओं में रानी हंसपुर गुफा वृहत्तम तथा कारु कार्य्य में उत्कृष्ट है। अन्यान्य गुफाओं में गणेश गुफा, अल-कापुरी गुफा या स्वर्गपुरी गुफा, पातालपुरी गुफा या मंचपुरी

गुफा, व्याघ्र गुफा, सर्पगुफा, जयविजय गुफा, हाथी गुफा प्रभृति गुफाएं प्रधान हैं। खण्डगिरिस्थ गुफाओं में तत्व गुफा, नवमुनि गुफा, बड़भुज गुफा, ललाटेन्दु गुफा इत्यादि प्रधान हैं। जिस समय उत्कल में जैनधर्म की प्रबलता थी उस समय इन गुफाओं में से अधिकांश गुफाएं खुदवाई गई थीं। राजा खारवेल के समय में हाथी गुफा, स्वर्गपुरी गुफा, मंचपुरी गुफा, सर्पगुफा, व्याघ्र गुफा जम्बेश्वर गुफा, हरिदास गुफा इत्यादि खुदवाई गई थीं। राजा खारवेल के पूर्व में भी बहुत कुछ गुफाएं बनाई गई थीं। नन्द राजाओं के पूर्वकाल में भी बहुत कुछ गुफाएं बनाई गई थीं। नन्द राजाओं के पूर्वकाल में भी वहां एक जैनगुफा थी, जहां जैन संन्यासी लोग निवास करते थे। देखने से अनुमान होता है कि खीष्ट पूर्व तृतीय या चतुर्थ शताब्दी में खण्डगिरी और उदयगिरी की गुफाओं का खुदवाना आरम्भ किया गया है। सम्भव है कुछ गुफाएं खीष्ट पूर्व प्रथम या द्वितीय शताब्दी में खुदवाई गई हों। केशरी राजाओं के शासनकाल में भी बहुत कुछ गुफाएं खुदवाई गई थीं। यद्यपि उन गुफाओं के कारु कार्य्य भुवनेश्वर और कोणार्क के सदृश सूक्ष्म और सुन्दर नहीं है। तथापि उस समय के उत्कल निवासियों की शिल्प निपुणता के यथेष्ट प्रमाण स्वरूप विद्यमान है। इन गुफाओं में जो मनुष्य के स्वरूप खुदे हैं वे स्वाभाविक हैं। मुखभंगी तथा हस्त इत्यादिओं को देखने से जीवन की

भिन्न २ अवस्थाओं का सुन्दर पता मिलता है। शिल्पी लोगों ने इन मूर्तियों में आशा, निराशा, सुख दुख, आवेग, उत्साह, ध्यान इत्यादिक मन के विभिन्न २ कार्यों का अच्छा दिग्दर्शन कराया है। हाथी, घोड़ा, मृग, मर्कट, हंस इत्यादिक जीवों की मूर्ति सुन्दरता से खोदित हैं। इन गुफाओं में जो वृक्ष पत्र इत्यादिकों का दृश्य खोदा गया है, वह भुवनेश्वर मन्दिर के खोदित दृश्य के समान इतना सूक्ष्म तथा सुन्दर नहीं है; किन्तु प्राकृतिक है।

इन गुफाओं के शिल्पकार्य को देखने से उस काल के सामाजिक तथा परिवारिक जीवन का एक अच्छा परिचय मिलता है। उस काल के पुरुष लोग अनेकांश में वर्तमान काल के समान ही कपड़ा पहिनते थे। कपड़ा घुटने के नीचे बहुत दूर तक नहीं रहता था। उच्च कुल की स्त्रियां उस समय सूक्ष्म वस्त्र (साड़ी इत्यादि) तथा स्वर्ण रौप्य अलङ्कार धारण करती थीं, किन्तु वे अलङ्कार वर्तमान कालीन अलङ्कार के सदृश इतने सूक्ष्म न थे। पुरुष लोग सिर में पगड़ी बांधते थे। उस समय भी दो मंज़िला घर, बैठने के लिये आसन (चौकी इत्यादि) खटिया, थाली, गुरुड, नाना वाद्य यंत्र, छाता, [illegible] हाथी घोड़ों के लगाम; तलवार, ढाल, धनुष, इत्यादि व्यवहार किये जाते थे। धर्म जीवन के भी अनेक दृश्य दृष्टि गोचर होते हैं। मन्दिरों के बीच में देव उपासना, परमात्मा भक्ति, तन्मयता का भाव, कीर्तन, नृत्य, गीत इत्यादिक [illegible]

महर्षि या धर्मवीर के उद्देश में शोभा यात्रा निकालना प्रभृति विद्यमान हैं। उदयगिरिस्थ रानी हंसपुर गुफा में अन्यान्य जैन तीर्थङ्कर के अतिरिक्त पार्श्वनाथ के जीवन के घटनावली के चित्र भी दिये जाते हैं। गणेश गुफा में भी इसी तरह के कुछ चित्र हैं। पार्श्वनाथ जी ने महावीर निर्वाण के २५० वर्ष पूर्व में जैन धर्म का प्रचार किया था। खीष्ट पूर्व ७५० अब्द के बीच में पार्श्वनाथ जी ने जैन धर्म का प्रचार किया था। यह स्थिर किया गया है। पार्श्वनाथ जी की जीवन का कुछ वर्णन खण्डगिरी और उदयगिरी में है और जैन तीर्थङ्कर महावीर की जैन कीर्ति भी खोदित है। इससे अनुमान किया जाता है कि भारत खण्डगिरी और उदयगिरी की कीर्ति अत्यन्त प्राचीन है। खण्डगिरी में पारसनाथ जी का मन्दिर है तथा इसके अतिरिक्त गुप्तगङ्गा प्रभृति कितने ही जलकुण्ड भी हैं।

धौलीगिरी:—धौलीगिरी भुवनेश्वर के दक्षिण में दया-नदी के किनारे पर है। विद्वानों का कहना है कि कलिङ्ग की प्राचीन राजधानी तोषाली शब्द का अपभ्रंश शब्द ही धौली है। इसमें भी कितने ही छोटी २ गुफाएँ हैं। धौली पर्वत में तीन-शिखर हैं। उनमें से अश्वत्थामा शिखर में सम्राट् अशोक के धर्म अनुशासन खोदित हैं। ये अनुशासन तीन स्तम्भों में लिखे गये हैं। प्रथम स्तम्भों में पैंतीस लकीरों में एक से छः अनुशासन लिखे गये हैं। मध्य स्तम्भ में सात से दस और चौदहवां अनुशासन और तृतीय स्तम्भ में ११ से १३ अनुशा-

सन लिखे गये हैं, इनमें से १ से ११ अनुशासन अशोक के साधारण अनुशासन हैं और दो अनुशासन (१२-१३) कलिङ्ग वासियों के प्रति विशेषता से लिखे गये हैं । अन्तिम १४ वाँ अनुशासन समस्त अनुशासनों के सार भूत स्वरूप धर्म की वास्तविक व्याख्या करता है । इनके अतिरिक्त धौली में कई नगरों पर गुफाएँ तथा मकान भग्नावस्था में पाये जाते हैं। यहीं पर पंच पाण्डव नामक एक गुफा भी है । एक शिव मन्दिर भी धौली के ऊपर में स्थित है जो सम्भवतः केशरी राजाओं के शासनकाल में तैयार कराया गया है । यद्यपि मन्दिर भग्नावस्था में है तथापि इसका शिल्प कार्य्य प्रशंस-नीय है ।

वाणिज्य:—सभ्यता का एक उपकरण वाणिज्य है जल वाणिज्य करने के पूर्व मनुष्यों को स्थल वाणिज्य में चतुर होना चाहिये । वाणिज्य पदार्थ उत्तम और अधिकता में न होने पर व्यापारार्थ किसी देश से बाहर नहीं जा सकते हैं। स्वदेश के बाहर व्यापार करने के लिये वणिकों में बुद्धि, कार्य्य कुशलता, हिम्मत, सहिष्णुता इत्यादि गुणों का होना आवश्यक है । जल वाणिज्य में इनके गुणों के साथ साथ अत्यन्त साहसी होना परमावश्यक है । इन सब बातों पर विचार करने से यह सिद्ध होता है कि सन् ई० से ३०० वर्ष पूर्व से ही कलिङ्ग वासी सामुद्रिक वाणिज्य में निपुण थे ।

नन्द राजाओं के शासनकाल से केशरी वंशीय राजाओं के शासनकाल तक कलिङ्ग की सामुद्रिक वाणिज्य में उन्नत अवस्था थी। पहिले यह बात कही जा चुकी है कि महाभारत काल में उत्कल देश में हाथी पकड़ने तथा हाथी दांत के शिल्प कार्य्य कर सकने की विद्या अधिकता से प्रचलित थी। सन् ईसवी पूर्व तृतीय और चतुर्थ शताब्दी के अनुशासनों में यह लिखा है कि उस समय कलिंग राज कुमारों को समुद्र यात्रा तथा समुद्र वाणिज्य की शिक्षा दी जाती थी। इससे अनुमान होता है कि बहुकाल पूर्व में ये विषय साधारण शिक्षा पद्धति में स्थान पा चुके थे। शिक्षा पद्धति के अन्तर्गत होने के लिये वैज्ञानिक रीति से विधिवद्ध होने के पूर्व देशके जन साधारण तथा वणिक लोगों में ये विषय प्रचलित थे इसमें सन्देह नहीं है। इस लिये खीष्ट पूर्व १०० वर्ष के पूर्व जो लोग कलिंग सामुद्रिक वाणिज्य प्रचलित रहना लिखते हैं उन लोगों का सिद्धान्त माननीय है। खीष्ट पूर्व चतुर्थ शताब्दी मेगेस्थनीज़ ने भारत का वर्णन लिखा है। उनने अपने वर्णन में लिखा कि उस समय और उसके पूर्व भी ताम्रपर्णी (लंका) द्वीप और कलिंग के बीच में हाथी का व्यापार था। लंका के हाथी बहुत बड़े और बलशाली होते थे। इस से कलिंग राजा लोग इन्हें विशेषता से खरीद कर अपने पास रखते थे। मध्य और उत्तर भारत के राजा लोग कलिंग देश से लंका हाथी खरीदते थे। कलिंग देश के व्यापारी लोग

लंका वासियों से लंका हाथी खरीद कर उनके बदले में उन्हें नाना प्रकार के वाणिज्य पदार्थ देते थे। समुद्री रास्तों से लंका हाथियों को अन्य देश में ले जाने के लिये बड़े २ हाथी जहाज़ तैयार करते थे। जिन्हें हाथी जहाज़ कहते थे। राजा खारवेल ने जो बहुत से हाथी जहाज़ पाण्ड्य राजा से अपने अधिकार में लिये थे वे सब अत्यन्त ही अद्भुत और आश्चर्यजनक थे। खृष्टपूर्व चतुर्थ शताब्दी में हाथी जहाज सरीखे बड़े २ जहाजों को समुद्र में चलाने की शक्ति प्राप्त करना निस्सन्देह ही बहुकाल व्यापी समुद्र वाणिज्य का फल हो सकता है। इस से खृष्ट पूर्व सप्तम या अष्टम शताब्दी के पूर्व ही कलिङ्ग में समुद्र वाणिज्य आरम्भ हुआ होगा और स्थल वाणिज्य अवश्य इससे भी वर्षों पूर्व से आरम्भ हो सकता है, इसमें सन्देह नहीं है।

इस तरह से विशाल जल और स्थल वाणिज्य से यह अनुमान होता है कि पूर्वकाल में कलिङ्ग में वाणिज्य पदार्थ प्रचुर परिमाण से पाए जाते थे; यहाँ तक कि देश की आवश्यकताओं की पूर्ति होकर बहुतसा माल बाहर भी भेजा जाता था। प्रचुरता के साथ २ दूसरे देश के साथ वाणिज्य करने को वाणि. पदार्थों की उत्कृष्टता का भी द्योतक है; क्योंकि विदेश में उत्कृष्ट पदार्थों का ही आदर हो सकता है। पूर्व काल में कलिङ्ग में क्या २ वाणिज्य पदार्थ होते थे यह इस समय ठीक तरह से अनुमान नहीं किया जा सकता; किन्तु इस देश में जो

कपड़ा, सफेद वस्त्र, जरीन कपड़ा तथा हीरा, सोना, लोहा इत्यादि खानिज पदार्थों की स्मृति अब तक भी विद्यमान है। उत्कल देश के कपड़े बहुत प्रसिद्ध थे, तथा देश विदेश में आदरणीय थे। कलिङ्ग देश के वस्त्रों का मान तामिल देश में अत्यन्त अधिक होता था। यहाँ तक कि तामिल देश में वस्त्र को "कलिङ्ग" कहते हैं। दूर देश के राजा लोग कलिङ्ग देश वासियों के बनाये कपड़ों का बहुत ही आदर करते थे और कलिङ्ग राजा लोग इस देश के बने कपड़ों को दूर देशों के राजाओं को उपहार में देते थे। एक समय कलिङ्ग राजा ने अयोध्या के राजा के पास एक कपड़ा उपहार में भेजा था। वह बहुत ही सूक्ष्म था। एक समय उस कपड़े को पहिन कर वहाँ एक पुरोहित राज दरबार में आया उसे उलङ्ग समझ कर राजा ने घर चले जाने की आज्ञा दी थी। कलिङ्ग या उत्कल चिरकाल सूक्ष्म वस्त्र तथा शिल्प कार्य्य के लिये इतिहास में प्रसिद्ध है।

अन्यान्य पदार्थों के अतिरिक्त हीरा भी इस देश का एक वाणिज्य पदार्थ था। सम्बलपुर हीरा के लिये प्रसिद्ध था। इस देश के रहने वाले भाड़ुआ जाति के लोग हीरा का व्यवसाय करते थे। सम्बलपुर का हीरा केवल भारत में ही प्रसिद्ध नहीं था। किन्तु भारत के बाहर रोम राज्य में भी इसका विशेष आदर होता था। सन् ई० पूर्व प्रथम और द्वितीय शताब्दी में सम्बलपुर का हीरा रोमदेश में अत्यधिक मूल्य में विक्रय होता

था। हीरा व्यवसायी झाड़ुआ जाति के लोग-देश विदेश में बस्ती बना कर भी अब तक हैं। और सम्बलपुर से हीरा का शेष हो गया है तथापि ये लोग पुराकालीन विपुल वाणिज्य की की स्मृति स्वरूप विद्यमान हैं।

वाणिज्य विस्तार और उपनिवेश—वाणिज्य विस्तार के साथ समयानुसार वाणिज्य की सुविधा के लिये विदेश में उपनिवेश स्थापन करना इतिहास के युगयुग में देखा जाता है। उत्कल इतिहास में भी वाणिज्य की सुविधा के लिये समुद्र पार कर दूर २ विदेश में उपनिवेश संस्थापन करना पाया जाता है। समग्र भारत में सब से प्रथम दूर विदेशों में उत्कल देश के लोगों ने उपनिवेश संस्थापन किया था। समग्र बंगाल-समुद्र अरब समुद्र तथा हिन्द महासागर में उत्कलीय वणिकों के वाणिज्य जहाज आया जाया करते थे। हिन्द महासागर के जावा द्वीप में समग्र भारतवासियों से सबसे प्रथम उत्कल देश वासियों ने आर्य्य उपनिवेश संस्थापन किया था। उत्कल निवासियों का यह साहसयुक्त कार्य्य समग्र भारत के इतिहास में प्रधान गौरवमय है। सन् ईस्वी से ७५ वर्ष पूर्व में कलिंग वणिक लोगों ने बंगाल उपसागर पार होकर हिन्दमहासागर में निर्भय पूर्वक पहुँच जावा द्वीप में उपनिवेश संस्थापन किया और कई सौ वर्ष तक सुविधा के साथ व्यापार किया। वर्तमान युग में उपनिवेश संस्थापन करने वाले

लोग स्थानीय आदिम अधिवासियों को निकाल बाहर कर या उन लोगों का समूल विनाश कर देश को अपने अधिकार में कर लेते हैं। किन्तु ईसामसीह के जन्म के अल्पकाल के पूर्व में उत्कलीय उपनिवेशकर्ता लोग जावा तथा अन्यान्य स्थानों में उपनिवेश संस्थापन कर अपनी उच्च सभ्यता से उस स्थान के आदिम अधिवासियों को सभ्य बनाया करते थे, उत्कलीय लोगों ने अब सब से प्रथम जावा में उपनिवेश संस्थापन किया तभी से वहां एक नूतन संवत् चलाया था जो अब तक भी वहां चलता है। वहां (जावा में) उन लोगों ने बहुत से देव देवियों के मन्दिर भी निर्माण किये जिनमें से कुछ मन्दिर अबतक भी विद्यमान हैं। जावा में आदिम मालय भाषा अब तक भी चलती है किन्तु कर्मानुष्ठान धर्म ग्रंथ, तथा अनुशासन इत्यादिकों में संस्कृत भाषा का परिचय मिलता है, जावा द्वीप के आर्य्य लोग अपने को क्लिंग वा कलिंग वासी कहकर अपना परिचय देते हैं। कलिंग निवासियों के वहां पर

नोट—भारतीय नाविक लोग अपने देशीय पदार्थों के विनिमय में, भारत में, जावा आदि द्वीपों से लौंग, जायफल और दालचीनी, चीन से चीनी बर्तन, सिंहल और फारस के उपसागरों से मोती, अफ्रीका से घोड़े, ट्रांस फिसयन और फारस से फल एवं फ्रांस से कपड़ों की आमदनी होती थी। इस के सिवाय भारत और अरब से सुगन्ध द्रव्य, इथियोपिया से कस्तूरी और सिंहल से कांच खरीदे जाते थे। (भारती से उद्धृत)

बस्ती बसाने के अनन्तर बहुत से गुजरात प्रभृति स्थानों के पहाड़ी लोग भी वहां आकर बसे किन्तु कलिङ्ग वासियों का वहाँ इतना प्रभाव जमा था कि ये लोग भी अपने को "क्लिंग" कह कर परिचय देने लगे। चीनी परिव्राजक फाहियान ने खीष्ट चतुर्थ शताब्दी में उत्कल के मुख्य बन्दर स्थान ताम्रलिप्त से समुद्र यात्रा कर प्रथम लङ्का गए। फिर लङ्का से जावा और जावा से बाली द्वीप होते हुये चीन देश में पहुँचे। उनने लिखा है कि वे इन सब स्थानों में उत्कलीय जहाज में गए थे और इन सब जहाजों को ब्राह्मण धर्मावलम्बी नाविक लोग चलाते थे। उन से उस समय के समग्र जावा निवासियों को हिन्दू थे ऐसा लिखा है।

जावा निकटवर्ती बाली द्वीप में भी उत्कलीय लोगों ने बस्ती संस्थापन भी किया था। बाली द्वीप में संस्कृत ग्रन्थ पाये जाते हैं, स्वर्गीय पं० बालगङ्गाधर तिलक ने एक श्री मद्भगवत गीता की पुस्तक पाई थी और उसकी आलोचना भी की थी। बाली द्वीप में वर्तमान ब्राह्मण क्षत्रिय इत्यादि चतुर्विध वर्णव्यवस्था का प्रचार है और वहाँ के आर्य्य लोग भी अपने को "क्लिङ्ग" कह कर परिचय देते हैं। जावा और बाली द्वीप में उपनिवेश संस्थापन की कथा अब भी उत्कल के घर २ में प्रचलित है।

जावा तथा बाली द्वीपके अतिरिक्त सुमात्रा, सिंगापुर, मालकस, पेगू तथा कम्बोडिया में भी उत्कलीय लोगों के वाणिज्य

प्रदेश में जा कर उपनिवेश संस्थापन करने का प्रमाण मिलता है इन २ स्थानों में जा कर उत्कलीय वणिक लोगों ने वहाँ के निवासियों को ब्राह्मण धर्म तथा सभ्यता से दीक्षित किया था। सम्राट् अशोक के शासन काल के पूर्व से भी कलिङ्ग का स्वर्ण भूमि याने ब्रह्मदेश के साथ व्यापारिक सम्बन्ध था अशोक के शासन काल में कलिङ्ग के बौध धर्म प्रचारक लोगों ने समुद्र पार कर ब्रह्मदेश में धर्म का प्रचार किया था।

इसके प्रमाण स्वरूप ब्रह्मदेश के इतिहास को देखें। यही नहीं वहां पर उत्कलीय लोगों ने उपनिवेश भी स्थापन किया था। ब्रह्मदेशस्थ प्रोम निकटवर्ती थाराक्षेत्र में उत्कल निवासियों की एक बस्ती थी। क्रमानुसार ब्रह्मदेश में उत्कल निवासियों का इतना प्रभाव बढ़ गया था कि उन लोगों ने प्रोम राज्य सिंहासन अधिकार कर बहुत समय तक राज्य भी किया था। इसके अनन्तर खीष्ट तृतीय शताब्दि में उत्कलीय वणिक लोगों ने बंगाल समुद्र को पार होकर वर्तमान के किनारे बहुत से उपनिवेश संस्थापन किये। इन सबों के बीच में बोर्न्न या सद्धर्म नगर प्रसिद्ध था। इससे यह प्रमाणित होता है कि वहाँ के अधिवासियों के धर्म की अपेक्षा उत्कलीय धर्म अधिक उन्नत और पवित्र रहा होगा। पेगू में जो हाल में पुरातन मुद्रा मिला है उसमें हिन्दू संकेत पाये जाते हैं। मलक्स और सिंगापुर में जो भारतवासी हैं, वे जावा और बली द्वीप के भारतीयों के सदृश अपने को क्लिंग

कलिंग निवासी कहकर परिचय देते हैं। इनके अतिरिक्त श्याम और कोच्चीन में भी कलिंग बस्ती थी। कलिंग वणिक लोग प्रशान्त महासागर पार होकर चीन और जापान के साथ भी वाणिज्य करते थे। पहिले कहा गया है कि फाहियान कलिंग पोत में बैठकर चीन गये थे। यही कलिंग वाणिज्य विस्तार का सर्वोत्तम प्रमाण है।

केवल पूर्व समुद्रमें ही नहीं किंतु पश्चिमसागर में भी जहाजी व्यापार होने का अच्छा प्रमाण मिलता है। स्वर्गीय भंडारकर महोदय अपने लिखित दक्षिण के इतिहास में लिखते हैं कि कलिंग निवासियों ने अरब समुद्र के व्यापार में एकाधिपत्य लाभ किया था। कलिंग देशीय वणिक लोग अरब समुद्र पार कर अफ्रीका महाद्वीप के उपकूलवर्ती राज्यों में तथा मडागास्कर द्वीप में भी वाणिज्य करते थे। इतने बड़े सुविशाल वाणिज्यक्षेत्र में वाणिज्य रक्षा के लिये उत्कल या कलिंगदेश में कितने वाणिज्य पदार्थ प्रस्तुत होते थे तथा इस तरह वाणिज्य के प्रभाव से यह देश कितना समृद्धिशाली रहा होगा, यह सहज ही अनुमान हो सकता है। इस तरह वाणिज्य की रक्षा के लिये जहाजी सेना भी रक्खी जाती थी। उत्कलीय रण जहाज़ हिन्द महासागर में स्वदेश वाणिज्यरक्षा के लिये निरन्तर घूम रहा था।

बन्दर स्थान--विपुल वाणिज्य विस्तार को देखने से उत्कल के किनारे बहुत से बन्दर स्थानों का रहना प्रत्

[illegible]ता है ये सब बन्दर कौन कौन और कहाँ कहाँ थे। इसका [illegible]ता पूर्णतः नहीं मिलता। ग्रीक लेखक टेलेमी लिखित भूगोल को देखने से यह जाना जाता है कि मेसोलिया (मछलीपट्टम) तथा कौनागर (कोणार्कनगर) कलिंग देश के प्रधान बन्दर स्थान थे। ब्रह्मदेश के दो वणिक बन्धु जहाज से कलिंग बन्दर एडजिटा (Adzeitta) में उतरना लिखा है किन्तु यह एडजिटा कहाँ पर है और कौन है? इसका पता नहीं मिलता इनके अतिरिक्त कलिंग पत्तन, चिल्कापुरी, चित्रो-त्पला या चारित्र बन्दर, हरीशपुर, सुवर्णरेखा, हिजिली तथा ताम्रलिप्त उत्कल देश के प्रधान बन्दर स्थान थे यह प्रमाणित है।



नवम अध्याय

धर्म

धर्म परिवर्त्तन—पहिले कहा जा चुका है कि भारत में जितने नवीन धर्मों का आविर्भाव हुआ है, प्रायः उन समस्त धर्मों का उत्कल में कुछ न कुछ प्रभाव पड़ा ही है, यही नहीं किन्तु उन में से किसी भी धर्म की सत्ता इस देश से बिलकुल उठ नहीं गयी है। भारत के अन्य स्थानों में यद्यपि उन धर्मों की सत्ता बिलकुल ही उठ गई है तथापि उत्कल देश में उन की स्मृति अब तक भी विद्यमान है। वे सब भिन्न २ धर्म राजाश्रित हो कर समय २ पर उत्कल देश में प्रबल हो उठे थे। उत्कलदेश में इन सब धर्मों के उत्थान और पतन के समाचार कोई २ अंग्रेज़ लेखक लोग इस देश को धर्म विप्लव क्षेत्र होना अनुमान करते हैं और उत्कल देश के इतिहास को धर्म विप्लव का इतिहास भी मानते हैं, किन्तु सचमुच इस देश में कोई महा धर्म विप्लव घटनायें नहीं हुई हैं। भिन्न २ धर्म मत विभिन्न विभिन्न युग में प्रबल हो उठे, थे किन्तु किसी भी मत का दुर्बल मत पर अत्याचार करना किसी समय भी देखा नहीं गया। परस्पर में प्रेम उदारता और सहिष्णुता उत्कल ही नह किन्तु भारत के धर्म इतिहास का मूल मन्त्र था।

ब्राह्मण धर्म—उत्कल में आर्य्य बस्ती संस्थापन होने के साथ २ ब्राह्मण अर्थात् वैदिक धर्म का प्रचार हुआ। ब्राह्मण धर्म के प्रभाव तथा उस की प्रतिष्ठा से उत्कल देश के आदिम अधिवासी लोग उसी धर्म और सभ्यता से दीक्षित हुए। उसी समय उत्कल देश के नाना स्थानों में कई तीर्थ स्थान तथा देवी देवताओं के मन्दिर भी संस्थापित हुए। पहिले कलिङ्ग को पतित देश कहते थे किन्तु ब्राह्मण धर्म प्रचारित होने के बाद उसे पवित्र देश कहने लगे। इस वक्त भी समग्र भारत में उत्कल देश पुण्य भूमि के नाम से प्रसिद्ध है।

जैनधर्म—उत्कल देश में नन्द राजाओं के शासन काल के कुछ काल तक याने सन् ईस्वी के पूर्व ५ वीं या ६ वीं शताब्दी तक ब्राह्मण धर्म निर्विघ्नता से चलता रहा, किन्तु नन्द राजाओं के कुछ काल पूर्व से ही जैनधर्म उत्कल में प्रवेश पा चुका था। यद्यपि नन्द राजा लोग वैदिक धर्मावलम्बी थे तथापि जैनधर्म उत्कल में टिका ही था। राजा नन्दवर्द्धन सब से पहिले जिन ऋषभदेव की प्रतिमूर्ति को कलिङ्ग राजधानी से उठाकर अपनी राजधानी में ले गए थे। किन्तु इतने पर भी जैन धर्म का लोप इस देश में एक दम नहीं हो पाया, और न जैनधर्म के प्रति नन्द राजाओं का कोई विद्वेष हुआ।

पारसनाथ—उत्कल देश में जो जैनधर्म प्रचलित हुआ था वह श्री महावीर का प्रतिष्ठित जैनधर्म नहीं था। महावीर

के प्रायः २२० वर्ष पूर्व में पार्श्वनाथ या पारसनाथ नामक एक महापुरुष ने जैनधर्म की सृष्टि की थी। भयदेवसूरि जी के रचित "पार्श्वनाथचरित्र" नामक एक ग्रन्थ है उस में लिखा है कि "पारसनाथ जी वाराणसी याने काशी के एक राजपुत्र थे। अपने यौवनकाल में पारसनाथ जी एक असाधारण वीर थे। इसी समय कुशस्थला यानी कन्नौज राजा की प्रभावती नामक एक परम सुन्दरी कन्या थी। पारसनाथ जी उस कन्या की सुन्दरता की ओर आकृष्ट हुए। इसी समय कलिङ्ग राजा ने प्रभावती के लोभ से कन्नौज पर आक्रमण किया। पारसनाथ जी ने कन्नौज नगरी के उद्धार के लिये कलिंग राजा के साथ युद्ध किया इससे कन्नौज का उद्धार हुआ और कन्नौज नरेश ने परम सन्तोष के साथ प्रभावती को पारसनाथ जी को समर्पण किया। कुछ काल सांसारिक सुख उपभोग कर लेने पर एक दिन पारस नाथ जी ने घूमते २ क्लान्त होकर एक अशोक वृक्ष के नीचे विश्राम लिया। वहाँ उनने योगमग्न तपस्वियों को देखा और उसीसे उनकी तृष्णा राजकार्य से हट गई। उसी दिन से पारसनाथ जी ने पवित्र संन्यास धर्म का आश्रय ग्रहण किया। बहुत काल के कठोर तपस्या के प्रभाव से उनका ज्ञान उदय हुआ और वे स्वयं जैन धर्म का प्रचार करने लगे। पौण्ड्र ताम्रलिप्ति तथा नागपुर इत्यादि स्थानों में घूम २ कर धर्म प्रचार करने के अनन्तर उनने सोमस्ते शिखिर (याने वर्तमान

गया ज़िला पारसनाथ पर्वत) में आश्रय ग्रहण किया और वहीं इनका शेष प्रयाण भी हुआ। इसीसे पारसनाथ पर्वत अब तक भी जैन तीर्थ माना जाता है।" खृष्ट पंचम शताब्दी में रचित "कलासूत्र" नामक ग्रंथ में पारसनाथ जी का जीवन चरित्र का वर्णन है। किन्तु उसमें पारसनाथ जी के कलिंग राजा को परास्त कर कन्नौज रक्षा करने का कोई भी हाल नहीं लिखा है। पारसनाथ जी के प्रचार बल से "ताम्रलिप्तिका" एवं "पौण्ड्रवर्द्धनीया" नाम से दो जैन संप्रदाय अन्यान्य 'स्थाविर' या जैन संप्रदायों में परिगणित हैं। पारसनाथ जी के जीवन चरित्र उदयगिरी की रानी हंसपुर गुफा में संपूर्णता से और गणेश गुफा में कुछ २ खोदित है। खण्डगिरी में पारसनाथ जी की मूर्ति की पूजा भी होती है, महापुरुष पारसनाथ जी के शिष्यगण उत्कल में जैनधर्म प्रचार करते थे, और उन लोगों ने राजधानी के निकट खण्डगिरी में एक जैन पीठ भी संस्थापित किया था। वह पीठ अब तक भी विद्यमान है और प्रति माघ सप्तमी के उपलक्ष में खण्डगिरी में एक मेला भरा करता है। इस धार्मिक कार्य में स्थानीय बहुत से लोग उत्साह के साथ योगदान दिया करते हैं।

बौद्ध धर्मः— महाराजा अशोक के कलिंग अधिकार कर लेने तक उत्कल या कलिंग देश में बौद्धधर्म का प्रवेश नहीं हुआ था। यद्यपि खृष्ट पूर्व पंचम शताब्दी में बौद्धधर्म की सृष्टि हुई थी तथापि महाराजा अशोक के शासन काल

के पूर्व यह धर्म बुद्धदेव के जन्म स्थान कपिलवस्तु और उसके निकटवर्ती स्थानों में ही आबद्ध था। कलिंग युद्ध के बाद महाराजा अशोक ने बौद्धधर्म ग्रहण किया और अपनी अलौकिक प्रतिभा, उदारता, तथा असाधारण क्षमता के बलसे बौद्ध धर्म को पृथ्वी व्यापी धर्म बना दिया। कलिंग में बौद्धधर्म पहिले महाराजा अशोक के प्रभाव से ही प्रवेश हुआ, इनके समय में राजधानी तोसाली के पहाड़ धउलीगिरी में तथा दक्षिण कलिंग की राजधानी जौगढ़ में महाराजा अशोक की एकादश आज्ञाएँ खोदित की गईथीं।

बौद्धधर्म:—कलिंग में राजधर्म के रूप में ग्रहण किया गया. महाराजा अशोक ने बौद्धधर्म के समस्त उच्च तत्वों को याने लोकशिक्षा, प्रजा चरित्र गठन, धर्मपालन इत्यादि को अनुशासनों में खुदवा कर प्रजाओं में प्रचार किया। कलिंग के जो राजा लोग महाराज अशोक के अधीन में नहीं थे उन लोगों में भी बौद्धधर्म प्रचार करने के लिये उनके विभिन्न देशों में अनुशासन खुदवाये गये। खण्डगिरी और उदयगिरी की जैन गुफाओं को देख तथा वहां जैन संन्यासियों के आश्रमों को देख बौद्ध धर्मावलम्बियों ने कटक ज़िला के आसिया पहाड़ तथा बालेश्वर ज़िला के कुपारी पर्वत में बहुत सी गुफाएं खुदवाई और वहां बौद्ध संन्यासियों के आश्रम बनवाये।

महाराजा अशोक के आश्रय में बौद्धधर्म इतना प्रबल हो

उठा कि यह पृथ्वी व्यापी धर्म बन गया और विशेषता इसमें यह थी कि पृथ्वी व्यापी धर्म हो जाने पर भी इस धर्म ने किसी अन्य धर्म के प्रति कोई विद्वेष प्रकाश नहीं किया। अनु-शासनों को देखने से यह मालूम होता है कि महाराजा अशोक अन्य धर्मों के प्रति विशेष प्रेम और सन्मान रखते थे। यही कारण था कि उनने उत्कल के शासनकर्त्ताओं को इसी तरह उदारता और सम्मान प्रदर्शन करने के निमित्त उनके राज्यों में अपनी आज्ञाओं का प्रचार किया था। महाराजा अशोक के अनन्तर उत्कल देश से बौद्धधर्म क्रमसे ह्रास होने लगा। और अबतो केवल असिआ पहाड़ और कूपारी पर्वत को छोड़कर उड़ीसा में अन्यत्र विशेषता के साथ बौद्धधर्म नहीं रह गया।

जैन धर्म का विस्तार:—महाराजा अशोक के बाद मौर्य्यराजत्व का प्रभाव घट गया और साथ ही बौद्ध धर्म का प्रभाव भी लोप हो गया। उनके बाद चैत्रवंश के महाराजा खारवेल एक प्रतापी जैन सम्राट हुए और जैनधर्म राजधर्म के रूप में ग्रहण किया गया। महाराजा खारवेल ने मगध राजधानी से जैन मूर्तियों को अपनी राजधानी के निकटवर्ती स्थान खण्डगिरी में लाकर फिर से संस्थापन किया। फिर से जैन धर्म का विस्तार बढ़ने लगा। जैन धर्म पीठ खण्डगिरी में बहुसंख्यक जैन संन्यासियों को आश्रय देने के लिये बहुत सी गुफाएँ खुदवाई गई। स्वयं राजा खारवेल अपनी धर्म

जीवनी में संन्यासी बन कर उदयगिरी में निवास करते थे ।

बौद्ध और जैन धर्म का अवसान:—चैत्रवंश के शेष-काल में जैनधर्म इतना प्रबल न रह गया । चैत्रवंश के शेष राजा सुरथ स्वयं ब्राह्मण धर्मावलम्बी थे और शेष काल में वे शाक्त बन गये । चैत्रवंश के बाद उत्कल देश आंध्र राजाओं के आधीन में चला गया । आंध्र लोग यद्यपि बौद्धधर्मावलम्बी थे, तथापि न बौद्धधर्म और न जैनधर्म ही फिर राजधर्म बन सके । जो कुछ भी हो किन्तु ये दोनों धर्म फिर इतने प्रबल न होने पर भी इस देश से एक दम लोप नहीं हो गये । किन्तु तिब्बत के प्राचीन इतिहास में यह लिखा है कि प्रायः २०० खीष्टाब्द में उस समय के प्रधान बौद्ध पुरोहित नागार्जुन ने उत्कल राजा को बौद्धधर्म में दीक्षित किया था । इसी समय १००० उत्कल देशवासी बौद्धधर्म में दीक्षित हुए थे । दिङ्नागाचार्य नामक एक बौद्ध दार्शनिक प्रायः ५०० खीष्टाब्द में उत्कल राजा के आश्रय में रहते थे । उन्हीं ने अपना प्रमाण न्याय शास्त्र "प्रमाण समुच्चय" नामक ग्रंथ प्रणयन किया था इसके बहुत काल के बाद खीष्ट सप्तम शताब्दी में चीन परिव्राजक हुएनसांग उत्कल में आये थे और उस वक्त बौद्ध और ब्राह्मण उभय सम्प्रदाय और मंदिरादि से चलते थे, ऐसा लिखा है । चीन देश के बौद्ध त्रिपिटक में यह लिखा है कि खृष्ट अष्टम शताब्दी में उत्कल देश के राजा ने चीन सम्राट के पास एक बौद्धधर्म ग्रंथ भेजा था । इन सब बातों से यह मालूम

वर्ष में उत्कल का गौरव है यह प्रवाद प्रचलित है कि प्राइमे के इन्द्रद्युम्न नामक एक परम भक्त राजा ने सर्वप्रथम श्री जगन्नाथ जी को पुरी व श्री पुरुषोत्तमक्षेत्र में स्थापन किया था श्री जगन्नाथ जी का संस्थापन किस समय हुआ और इन्द्रद्युम्न राजा कौन थे, यह वर्तमान समयमें निश्चयरूपमें कहना कठिन है। बौद्ध और जैनधर्म के अनुसार बुद्ध और तीर्थङ्कर स्वामियों की मूर्तियों की पूजा होती थी। इन धर्मों की प्रबलता के समय जनसाधारणों के चित्त मूर्तिपूजा की ओर आकृष्ट होते थे। कोई २ अनुमान करते हैं कि जन साधारणों के इस प्रकार के मनोभाव देखकर श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र में श्री जगन्नाथ जी की प्रतिष्ठा खीष्ट पूर्व प्रथम या द्वितीय शताब्दी में होना बतलाया जाता है। किन्तु यह मत कहां तक ठीक है यह नहीं कहा जा सकता। श्री जगन्नाथजी की प्रतिष्ठा चाहे किसी कारण से भी हो या जिस समय में हो उत्कल जो युग युग से श्री जगन्नाथ जी के कारण समग्र हिन्दू जगत् में प्रधान तीर्थरूप में आदर पा रहा है तथा हिन्दूधर्म के प्रधान साम्य और मैत्रीभाव को जगत् में प्रकाश कर रहा है; यहां उत्कल इतिहास में एक प्रधान गौरव युक्त घटना है। असंख्य हिन्दू नरनारी प्रतिवर्ष इस देश में आकर और श्री जगन्नाथ जी का दर्शन कर अपने को कृतार्थ मानते हैं। महाभारतयुग में उत्कल एक पतित देश गिना जाता था किन्तु श्री जगन्नाथ

जी के कारण उत्कल समग्र हिन्दू जगत् में प्रधान पुण्यक्षेत्र गिना जाने लगा। हिन्दू धर्म का समस्त सारतत्व तथा संपूर्ण माहात्म्य मानों श्री जगन्नाथ जी में ही पुंजीभूत है। निःसन्देह श्री जगन्नाथ जी ही उत्कल इतिहास के स्मरणीय हैं।

॥ इति ॥



श्रीमान् ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी तथा बाबू कामताप्रसाद जी जैन एम० आर० ए० एस० (लन्दन) आनरेरी सम्पादक 'वीर' पाक्षिक पत्र के कुछ नोट

प्रथम अध्याय के लिये:—कलिङ्ग के त्रिभेद यद्यपि विदेशी इतिहासज्ञों की अपेक्षा ठीक है, परन्तु भारतीय शास्त्र-कारों के अनुसार कलिङ्ग और उत्कल दो विभिन्न देश थे। जैसे कालिदास के रघुवंश के निम्न श्लोक से प्रगट हैः-

"स तीर्त्वा कपिशां सैन्यैर्बद्धद्विरद सेतुभिः।
उत्कला दर्शितपथः कलिंगाभिमुखो ययौ॥"

तथा आड्र–उड्र आजकल का उड़ीसा भी इससे पृथक् था। यथा कविराम ने अपने दिग्विजय प्रकाश में कहा हैः-

"औड्रदेशादुत्तरे च कलिङ्गो विश्रुतो भुवि।
तद्राज्यं भौमकेशस्य सर्व लोकेषु विश्रुतम्॥ १=१॥

तीन कलिंगों का उल्लेख प्लिनी ने किया है (१) कलिंगी (२) मोद्दोग त्रिङ्गम (३) मक्की कलिंगी (Pliny History) प्लिनी ने उड़ीसा के पश्चिमांश को कलिंग अनु-

मान किया है। मोदोगत्रिकलिङ्ग को कोई मध्य कलिंग और कोई त्रिकलिंग मानता है (देखो हिन्दी विश्वकोष भाग १, पृष्ठ २१६, २२०) मध्की कलिंगी का रूपान्तर मध्य कलिंग है। यह मधु द्वीप वासियों का द्योतक है। इस तरह कलिंग के त्रिभेद भी प्रकट होते हैं।

द्वितीय अध्याय--पुण्यिभूमि:—पुण्यभूमिरूप में जैनधर्म का सम्बन्ध बहुत प्राचीन है। जैन हरिवंशपुराण (सर्ग ३ श्लोक ३-७) में इस देश में भगवान ऋषभनाथ जी और महावीरजी का समवशरण आया बतलाया गया है जहाँ तीर्थंकर भगवान का समवशरण पहुँचता है वह अतिशयक्षेत्र होता है। इस अपेक्षा कलिंग देश बहु प्राचीनकाल से जैनियों के निकट पुण्य-भूमि है। हिन्दुओं के भागवत में (५। ३-६) इन्हीं ऋषभदेव को जैनधर्म का संस्थापक और आर्यावर्त के विहार करने वाला लिखा है। इससे जैन हरिवंश पुराण के कथन का समर्थन होता है।

भागवत में ऋषभदेव को आठवाँ अवतार माना है और बारहवें अवतार वामन का उल्लेख वेदों में है, इसलिये वेदों से प्राचीनकाल में ऋषभदेवका अस्तित्व प्रमाणित होता है। ऋग्वेदादि में भी वृषभनेमि, आदि नाम आये हैं और यही नाम जैन तीर्थंकरों के भी थे। इसलिये इसी ऋषभदेव के पादपद्मों से अति प्राचीनकाल में पवित्र हो चुका था। ऋषभदेव के बाद तेईसवें श्रीपार्श्वनाथ और चौबीसवें श्री वर्द्धमान स्वामी के द्वारा भी यहाँ जैनधर्म का प्रचार हुआ था।

तृतीय अध्याय-देश का प्राचीनत्व—जैनों की मान्यता है कि इस अवसर्पिणी काल के जब तीन काल जिसमें भोग भूमि की पूर्णता हो चुके तब नाभिराय मनु के पुत्र ऋषभ देव हुए और इन्हीं ने जनता को दैनिक कर्म में दक्ष बनाया असि, मसि और कृषि इत्यादि कार्य्य सिखाये। भागवत में भी करीब २ यही कहा गया है। इसी समय भगवान की अनुमति से इन्द्र ने विविध प्रदेश, नगर और ग्रामादि रच दिये थे। इस पर श्री ऋषभदेव ने योग्य पुरुषों को जिनको उन्होंने क्षत्री कहा इन देशों का राजा नियत किया था। उन देशों में कलिंग भी था। (महापुराण सर्ग १५) यहाँ के राजा भगवान ऋषभदेव के पुत्रों में से एक थे। इन्हों ने अन्त में राज्य त्याग करके दिगम्बरी दिक्षा धारण की थी। जैन हरिवंशपुराण सर्ग ११ श्लोक ६४ से ७१ तक)। इसके उपरान्त मध्य के तीर्थङ्करों के समय में भी कलिंग से जैन सम्बन्ध जैन पुराण में यथाविधि लिखा है। उपरान्त भगवान पार्श्वनाथ जी के बाद और भगवान महावीर जी के पहिले यहाँ से जैन सम्बन्ध ऐतिहासिक ढंग से प्रकट होता है। अंग देश के राजा दधिवाहन को यहाँ के राजा का मित्र बतलाया गया है। कलिंगम से नर्मदातिलक हाथी यहाँ के राजा ने दधिवाहन को भेंट में भेजा था। आधुनिक ऐतिहासिक भी अंग और कलिंग के सम्बन्ध को स्वीकार करते हैं। (Cambridge History of India—Ancient India Volume I)

अंग के राजा की रानी पद्मावती यहाँ आकर एक माली के घर अज्ञात अवस्था में रही थी। यहीं उसने पुत्र प्रसव किया था, जिसका नाम कर्कण्डु रक्खा था।

कर्कण्डु का पालन पोषण एक विद्याधर ने किया था। उस समय यहाँ की राजधानी दन्तिपुर थी। कलिंगके एक छोर पर विन्ध्य शैल था यह भी प्रकट था (कर्कण्डुचरित्र) दन्तिपुर का का उल्लेख बौद्ध शास्त्रों में भी है। साधारणतः यह प्रकट है कि महात्मा गौतमबुद्ध के देहावसान के समय से यह दन्त-पुर हुआ। स्वयं बौद्धों के जातक कथाओं (भाग २ पृष्ठ ३६७) और महावस्तु (३-३६१) ग्रन्थ से इस नगर का बुद्ध से पहिले का अस्तित्व प्रमाणित होता है। इस अपेक्षा जैन कथाकार का इसे भगवान पार्श्वनाथ के तीर्थ का नगर बतलाना ठीक है। महाभारत (उद्योगपर्व) का दन्तकुर ही शायद यह दन्तपुर है. जहाँ कृष्ण ने कलिंगों को हराया था। प्लिनी ने इसे Dandagula or Dandaguda बतलाया है जिस से प्रगट है कि इसका असली नाम दन्तकुर था। जैनकथा ग्रन्थ 'कर्कण्डुचरित्र' में अगाड़ी कर्कण्डु को ही दन्तपुर का राजा होना बतलाया है।

दन्तपुर का राजा सन्तान रहित होकर मर गया था। इस पर लोगों ने कर्कण्डु को राजा चुन लिया था। आखिर कर्कण्डु चम्पा में रह कर अङ्ग और कलिंग का राज्य करते रहे थे।

इन का ऐतिहासिक परिचय डॉ० जार्ज कारपेण्टियर साहब ने अपनी एक स्वेडभाषा की पुस्तक में दिया है। इस तरह जैन शास्त्रापेक्षा भी कलिंग एक बहु प्राचीन प्रदेश प्रमाणित होता है और वहाँ पर जैनधर्म का बहु प्रचार प्रारम्भ से रहा है। सम्भव है इसी कारण ब्राह्मण शास्त्रों में इन कलिंगादि जैन प्रधान देशों में जाने की मनाई की गई है।

दन्तपुर के अतिरिक्त जैन और हरिवंशपुराण में कांचनपुर नामक नगर और भी कलिंग में बतलाया गया है। महाभारत में कलिंग के दो प्रधान नगर मणिपुर और राजपुर बतलाए हैं, बौद्ध शास्त्र में कुम्भवती नगरी का उल्लेख और है। प्राचीन शिला लेखों में कलिंग नगर, पृष्ठपुर, पेड्डीपुर प्रभृति अन्य नगर भी मिलते हैं। यह विद्वानों को मान्य है कि आन्ध्र और कर्नाट प्रदेशों से कलिंग प्रदेश बहु प्राचीन है और इस का राजनैतिक हाल विशेष ज्ञात है। देखो "South Indian Janism भाग दो पृष्ठ १११"

अध्याय चतुर्थ--नन्दवंशः—नन्द राजाओं का जैनधर्मावलम्बी होना भी लिखागया है (देखोSmith's Erly History of India Page 114) डा० शेषागिरी राव एम० ए० आदि मगध के नन्दों को जैन लिखते हैं। क्योंकि जैन धर्मी होने के कारण ही वे श्री आदीश्वर की मूर्ति को अपनी राजधानी में लेगये थे (देखो South India Jainism भाग २ पृष्ठ ८२)

चन्द्र गुप्त मौर्य्य को उक्त विद्वान जैनी होने के पहिले ब्राह्मण बतलाते हैं। इसी कारण इसने जैन धर्मी राजा नन्द के विरुद्ध कौटिल्य के साथ शस्त्रग्रहण किये थे। आखिर चन्द्रगुप्त जैन हो गये थे (पूर्वप्रमाण पृष्ठ ५७) चन्द्र गुप्त के जैन होने के विशद प्रमाण रायबहादुर डाक्टर नरसिंहाचर ने अपने श्रवण-बेलगोल नामक पुस्तक में संग्रह किये हैं। यह पुस्तक अंग्रेजी में लिखित है और जैन गज़ट आफिस ९ अम्मन कुयेल स्ट्रीट मद्रास से मंगा सक्ते हैं। इससे चन्द्रगुप्त का जैन होना स्पष्ट प्रमाणित है। अशोक भी अपने प्रारंभिक जीवन में जैन माना गया है, इस तरह नन्द वंश और चन्द्रगुप्त मौर्य्य का जैन होना प्रमाणित है। इन सबका वर्णन स्वर्णबेलगोल के शिलालेख (Erly faith of Ashok Janism by Dr, Thomas. South Indian Jainism Part 2 Page 39) राजतरङ्गिणी और आईन अकबरी में मिल सक्ते हैं।

षष्टम अध्याय--खारवेलः— (धृसी चरित्र काव्य जिसे पं० नीलकन्ठ दास ने लिखा है उसका अक्षरसः अनुवाद किसी सहायकके अनुरोध और खर्च सहन करने पर काव्यमें ही कर दिया जा सक्ता है। इस पुस्तक के पढ़ लेने पर धृसी चरित्र काव्य को समझ सकने और उसके प्रति प्रेम होने की संभावनाहै)।

अनुवादक 'बाल'

राजत्व के सप्तम वर्ष में विवाह होने का उल्लेख शिलालेख में है और पं० नीलकन्ठ दास एम० ए० के लिखित काव्य में नवम वर्ष बतलाया है। इस पर शङ्का करना वृथा है। राजा खारवेल का विवाह सप्तम वर्ष में किसी अन्य राजकुमारी से हुआ होगा और नवम वर्ष में डेमिट्रिअस प्रथम के विरुद्ध जाते समय उनका गान्धर्व विवाह धूसी से होगया होगा। डेमिट्रिअस प्रथम का एक सिक्का ईसा से पूर्व १९० का मिलाहै। (Vide Cambridge History of India Part I Page 464)

इसलिये यह राजा समकालीन खारवेल का था। अतएव उससे संग्राम होना सम्भव है। खारवेल के हाथी गुफा वाले लेख में इस विवाह और आक्रमण का उल्लेख वेशक पढ़ा नहीं गया है। परन्तु इससे उसमें इन बातों का उल्लेख न होना नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह शिलालेख अधूरा पढ़ा गया है, और सातवें से नवें वर्ष तकका हाल पढ़ा नहीं जाता। इस लिये इस कथा को कल्पित मानना ज़रा कठिन है। फिर यदि उसमें उल्लेख हो तो वह लालकसके हीन राजा होनेके कारण न होना ठीक है। ऐसा प्रतापी राजा उस उल्लेख को कैसे लाता परन्तु अपने प्रेम को वह प्रकट करता और डेमिट्रिअस पर की विजय वह अवश्य प्रकट करता, इसलिये इन बातों का उल्लेख उसमें होना ही चाहिये। लालकस और धूस का नाम सिन्ध प्रान्त के निवासियों के समान ही है। खारवेल का

जावा जाना भी सम्भव है, क्योंकि वहां जैनधर्म का अस्तित्व मिलता है।

सप्तम अध्याय-कौशल:—राजिम के निकट आरङ्ग (रायपुर ज़िला) में जैनियों के पुराने मन्दिर और प्रतिमाएं हैं (मध्यभारत जैन स्मारक)

ताम्रलिप्ति:—ताम्रलिप्ति या तमलक से पुरानी सड़क राजगृह (जैनतीर्थ) व पालगञ्ज पारसनाथ पहाड़ के पास तक गई है। Vide Manbhumi Gazitter Page 48)

अध्याय नवम जैनधर्म—जैनधर्म का सम्बन्ध कलिंगसे बहु प्राचीन है। ऐतिहासिक काल में भी यहां जैनधर्म प्रचार होता था यह भी प्रमाणित है। जैनमत दर्पण के पाठ करने से पाठक जैनधर्म की प्राचीनता का अनुमान कर सकेंगे। यह पुस्तक जैनमित्र मण्डल, दरीबाकलाँ देहली से मिल सकेगी।

डाक्टर शेषागिरी राव लिखते हैं कि "खारवेल के समय कलिङ्ग के राजनैतिक वातावरण में जैनधर्म का विशेष ह्रास प्रमाणित होता है। कलिंग के कोल और भूयँ लोगों को परास्त किया था। जैन लोग कदम्ब वंशी ही थे। यह ब्रह्मक्षत्री कदम्ब राजा जैनधर्मी थे और उनकी राजधानी पलसी (आज कल की हलसी) थी। जब यह कदम्ब ब्राह्मणधर्मी हुए तब इनकी राजधानी जयन्तीपुर थी। (South Indian Janism Part II Page 65) कलिंग देश का आन्ध्र राजवंश भी जैन था। अशोक के उपरान्त सचमुच जैनधर्म का विशेष उत्कर्ष था और तब से कलिंग में जैनधर्म, चीनी यात्री हुयेनसांग के समय तक बराबर प्रचलित रहा था। (Beal, Life of Huin Tsang Vol. II)

श्री खंडगिरी उदयगिरि की हाथी गुफा के शिलालेख की नकल

इस लेख में १७ लाइन हैं।

(१) नमो अरहन्तानं नमो सब सिधानं वेरेन महाराजेन महामेघवाहने न चेतराज वसवधेन पसथसुभ लखने (न) चतुरन्तलठान गुनोपगतेन कलिंगाधिपतिनां सिरि खारवेलेन।

(२) पन्दरसव हानि सिरि कुमार सरीरवता कीडिता कुमार कीडकाततो लेख रूप गणना व वहार विधि विसारदेन सव विजावदातेन नव वसानि योवराजं पसासित सयुंणचतुविंसति वसो च दान वधमेन सेसयोवनाभि विजिय वत्तिये।

(३) कलिंग राजवंस पुरिस युगे महाराजाभिसेच्वनं पापुनाति भिसित मलो च पधमवसे, वोतविहत गोपुर कार निवेसनं पटिसं खारयाति कलिंग नगरिं खिवीर च सित लत डागपाडियो क वधा पयति सबु यान पति संठापन च ।

(४) कारयति। पनतीसही सतसहसेहि पकातिये रज-यति दितिये च वसे अभितयिता सातकणि पछिम दिसं हय गजनररध वहुलं दुंडं पठापयति कुसंवानं खतियं च सहोयवता पतंमसिक नगरं (?) ततिये च पुनवसे।

(५) गन्धववेद वुधो दपनत गीत वादित संदसनाहि

उसव समाज कारापनाहि च कीडापयति नगरीं इथ च वुथे वसे विजाधराधिवास अहतं पुवं कलिंग पुवराज नमं सित··· धम कूटस···(पू) जित च निखितछुत

(६) भिंगारेहि तिरतन सपतयो सवर ठिक भोज केसा देवे दसय पतिपंचसे च दानि वसे नदराजाति वससतं ओघाटितं तनसुली चटावाठी पनाडिनगरं पवेस······राज सेयसं हंसणतो सव करावणं—

(७) अनुगह अनेकानि सत सहसानि विसजतिपोर जान पदं सतमं च वसं पसासतो च······सवीं तुकुल······अठमे च वसे·········

(८) घातापयिता राजगहन पं पीडापयति पनिनं च कमरदान पनादेन सवत सेन वाहने विपमुचितु मधुरं अपयातो नवमे च (वसे ?) ···पवर को।

(९) कपरूखो हयगजरथ सह यत सवं घरावसघ···यस वागहानं च कारयितु वमणान रढिसारं ददाति अरजग्हि–

(१०)······(निवा) सं महाविजय पासादं कारयति अठतिस सतसह सेहि दसमें चवसे···भारधवसप टाव······ कारापयति···उयतानं च मनोरथानि उपलभता,

(११)···ल युवराज निवेसितं पाथुडं गरदंभ नगले न कासयति जन पदभावनं च तेरस वस सताक···दमामरदेह संघातं वारसमं च व (सं)······हसिहि विता स्वन्तो उत-रापथराजानो।

(१२) मगधानं च विपुलं भयं जनेन हथिस गंगा यं पाय यति मगधं च राजानं वहु पटी सासिना पादं वन्दापयति नन्द

पंज—र्नितस अगजिनस·····गहरतन पडिहार ह्निअ मगधं वसिवु न यरि ।

(विजाधरू) लेखिलं वर्णान सिहरान निवेसीयति सत-वस दान परिहारेन अभूतम करियमं चह्राधी नादान परिहार ············आहरापयति इंध सतस ।

(१४)·········सिनोवसिकरोति लरेसमे व से सुपव तवि जयचि को कैमारी पर्वते अरहतोप । (निवासे) वाहिकाय निसिदियायं यपज के··············काले रिखिता ।

(१५)······(स) कत समायो सुबिहितानं च सव दिसानं (यानिनं) तापसा (नं ?) ···संहतानं (?) अरहन्त निषिद्रिया समीपे पभारे वरकारू समथ (थ) पतिहि अनेक योजनाहि······

(१६)···पटाल के चेत के च वेडुरिय गभे थमं पतिठा पयति पनत रियसठि वससते राजमुरिय कालेवो छिनेच चौयठ अगसति कुतरियं चुपा दयति खेम राजा वधराजा स भिचु-राजा इ (ना) मराजा पसन्तो सनतो अनुभव तो (क) भाणानि ।

(१७)······गुण विशेष कुशलो सव पासण्ड पजको······ नाम संस्कार को (अ) पतिहत चकि वाहन·················· पसन्त चको राजसिवंश कुल विनिगतो····················· खारवेल सिरि ॥